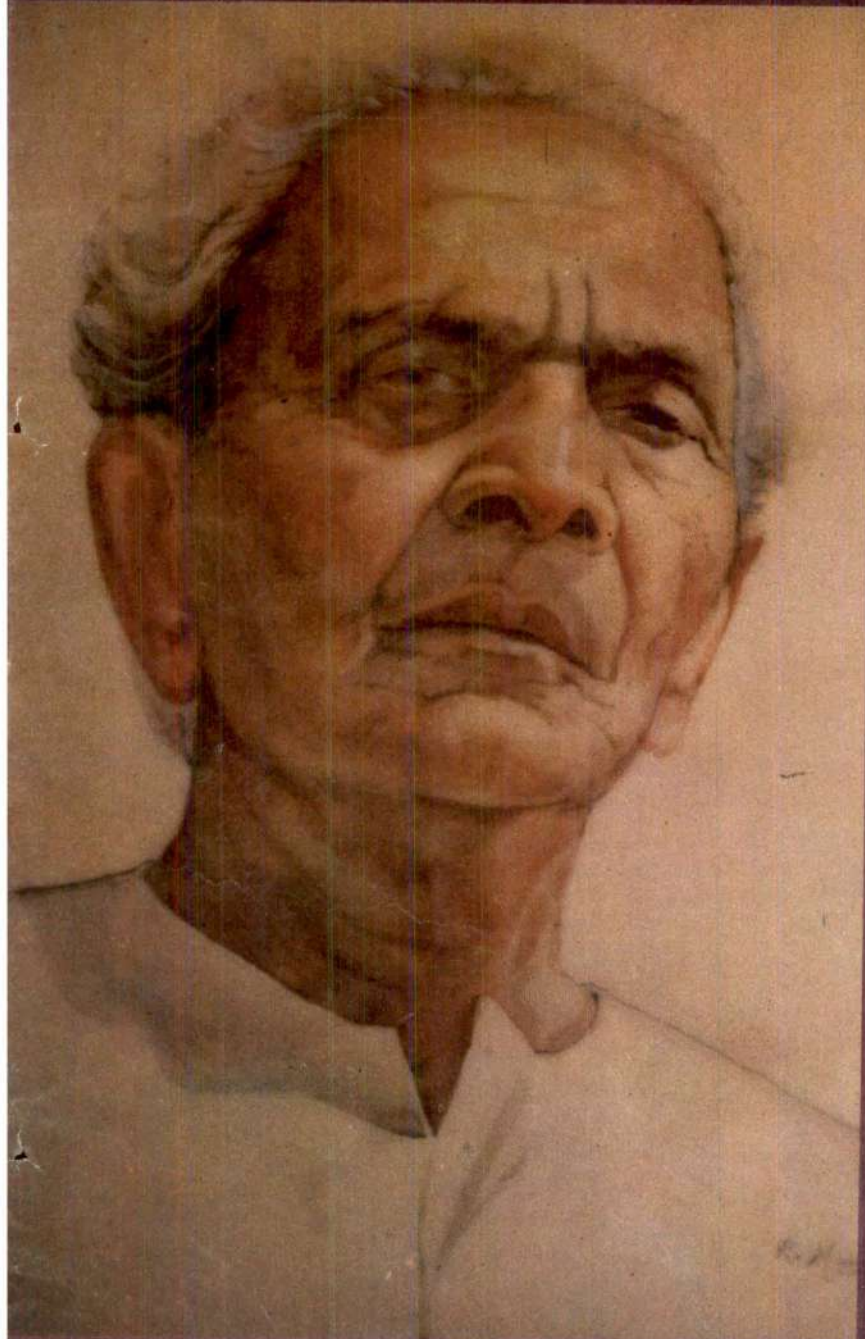


आजकल

साहित्य एवं संस्कृति का मासिक



केदार—प्रसंग



और भी, बरसों भी

केदारनाथ अग्रवाल के कृतित्व पर प्रकाश मनु
धूप धरा पर उतरी

व्यक्तित्व पर अजय तिवारी

‘अपने टूटेपन को कविता की
ममता से जोड़ा!’

— साक्षात्कार : सुधीर कुमार सिंह

पांच कविताएं : केदारनाथ अग्रवाल

■ विनोबा भावे पर यदुनाथ थत्ते ■ समकालीन फ्रांसीसी चित्रकला ■ अटल नहीं है ध्रुवतारा : गुणाकर मुले
■ विपर्यय और धर्मनिरपेक्ष संस्कृति ■ यह जो आकाश है

युवा हिंदी लेखन पर केंद्रित अंक

आजकल के स्वर्ण जयंती वर्ष के समापन के अवसर पर मई-जून (संयुक्तांक) 1995

युवा हिंदी लेखन की सामर्थ्य और संभावनाओं का एक जायजा।

इस अंक के रचनाकार हैं :—

कहानी

तेजी ग्रोवर, जयनंदन, प्रेमपाल शर्मा, क्षमा शर्मा, मीरा कांत, क्षमा कौल, प्रियदर्शन, अलका सरावगी, लाल्टू, हरिसुमन बिष्ट, संजयकुमार सिंह, उमेश प्रसाद सिंह, संदीप नाईक, सगीर रहमानी, मुक्ता, जया जादवाणी, आनंद संगीत आदि।

कविता

बोधिसत्व, विमल कुमार, हेमंत कुकुरेती, एकांत श्रीवास्तव, कुमार अंबुज, सुलतान अहमद, मोहन राणा, शरदरंजन शरद, उषा यादव, विनीता, संज्ञा सिंह, कृष्ण मोहन झा, पंकज चतुर्वेदी, प्रेमरंजन अनिमेष, विजय शंकर चतुर्वेदी, रवींद्र स्वप्निल, आलोक श्रीवास्तव, सिद्धेश्वर सिंह, रतीनाथ योगेश्वर, बद्रीनारायण आदि।

उपन्यास

मध्यांतर : संजय सहाय का लघु उपन्यास

युवा लेखन पर एक दृष्टि :

कहानी में नव लेखन : जानकी प्रसाद शर्मा

खुशहाली के मिथकों के बीच

कविता पर विजय कुमार

समकालीन हिंदी उपन्यास : नए लेखकों का संदर्भ : गोपाल राय

साथ में साक्षात्कार, समीक्षा आदि।

लगभग पौने दो सौ पृष्ठों के इस अंक का मूल्य 15 रुपए।

आजकल

संपर्क :- व्यापार व्यवस्थापक
प्रकाशन विभाग,
पटियाला हाउस,
नई दिल्ली - 110001

लेख

6. ... और भी, बरसों भी
85वें वर्ष में प्रवेश के अवसर पर कवि केदारनाथ अग्रवाल के कृतित्व पर प्रकाश मनु
13. धूप धरा पर उतरी
अजय तिवारी द्वारा केदार जी का जीवन परिचय
23. अटल नहीं है ध्रुवतारा
गुणाकर मुले की पुस्तक आकाश दर्शन का एक अंश
25. दस चुनी हुई फिल्में
अंतर्राष्ट्रीय फिल्म समारोह में दिखाई गई फिल्मों से दीवान सिंह बजेली का एक चुनाव
30. अंतर्राष्ट्रीय फिल्म समारोह : एक रिपोर्ट
हामिद हुसैन
36. कैनवास से परे
पिछले दिनों आयोजित समकालीन फ्रांसीसी कला की प्रदर्शनी पर मिथिलेश श्रीवास्तव

43. अथातो ब्रह्म जिज्ञासा

आचार्य विनोबा भावे की जन्म शताब्दी के अवसर पर उनके व्यक्तित्व पर यदुनाथ धत्ते

साक्षात्कार

15. टूटेपन को कविता की ममता से जोड़ा
केदारनाथ अग्रवाल से सुधीर कुमार सिंह की बातचीत

कहानी

17. दूसरी जिंदगी
योगेश भटनागर
34. झांसी
अशोक राजा की तमिल कहानी
40. पुल पर
तपन बनर्जी
45. अपने-अपने पिरामिड
विलास गुप्ते

कविताएं

5. पांच कविताएं
केदारनाथ अग्रवाल
32. चार कविताएं
हरिओम राजोरिया
33. उड़िया कविता
मानस रंजन महापात्र

पुस्तक चर्चा

48. यह जो आकाश है
देवेंद्र मेवाड़ी
52. विपर्यय और धर्मनिरपेक्ष संस्कृति
अरुण कुमार त्रिपाठी
56. सूफियाना खयालों की संग-तराशी
प्रताप सिंह 'पारखी'
60. बदलता सामाजिक परिवेश और समकालीन कहानी
हरियश राय
2. पत्र

आजकल

स्थापित 1945

वर्ष : 50 अंक : 12,
पूर्णांक; 607;
अप्रैल, 1995
(चैत्र-वैशाख
शक संवत् 1917)

संपादक
प्रताप सिंह बिष्ट

उप संपादक
हामिद हुसैन
चित्र : राम मोहन सिंह
आवरण सज्जा :
गोविंद प्रसाद

संपादकीय पत्रव्यवहार :
संपादक 'आजकल'
प्रकाशन विभाग
पटियाला हाउस,
नई दिल्ली-110001
दूरभाष : 387069

चंदे की दरें
एक प्रति : 5 रुपये;
वार्षिक : 50 रुपये;

चंदे व पत्रिका न मिलने संबंधी
पूछताछ के लिए संपर्क करें :
व्यापार व्यवस्थापक
प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मंत्रालय
नई दिल्ली-110001



कला इतिहास अंक

● नवंबर, 1994 में 'सौ साल के सन्नाटों की आवाजें' विश्लेषणात्मक लेख यद्यपि एक गहराई लिए हुए है तथापि इसमें कुछ प्रसिद्ध चित्रकारों एवं उनके योगदान को नजरअंदाज किया गया है यथा मकबूल फिदा हुसैन। जहां तक मैं समझता हूं, हुसैन की मौलिकता एवं चित्रों में रंगों का अद्भुत प्रयोग उन्हें एक अलग ही श्रेणी में रखता है जिसकी चर्चा इस लेख में न करना इसे एक अस्पष्ट दस्तावेज बना गया है।

बाल साहित्य पर श्रीप्रसाद की टिप्पणी सटीक एवं सामयिक बन पड़ी है।

— मुकेश मयंक, मोतिहारी

● नवंबर अंक काफी अच्छा बन पड़ा है। वस्तुतः अंक को 'कला इतिहास अंक' ही कहना

ज्यादा समीचीन होगा। देवी प्रसाद मिश्र का आलेख 'सौ साल के सन्नाटों की आवाजें' में कला (चित्रकला) के वर्षों के उतार-चढ़ाव को रेखांकित किया गया है। 'भारतीय चित्रकला' के सालों के समानांतर या कि उसके बाहर-बाहर आवाजाही करने वाली शताब्दी हिंदुस्तानी आदमी के लिए विभ्रमों की शती रही है। सचमुच इस शताब्दी में रची गई कला का मूल्यांकन ही नहीं, उसकी समस्त रचना प्रक्रिया भी काफी जटिल है। यूं कहा जाए कि संपूर्ण आलेख एक कला-मात्र है जो समकालीन भारतीय कला की बारीकियों, संघर्षों और बाजार-संस्कृति की पनपती विचलनता को अंकित करता है, वहीं गोविंद प्रसाद का आलेख 'रूपों में अरूप की खोज' समकालीन चित्रकला के संघर्षों और तनावों को व्यक्त करता है। निर्मल वर्मा अपने आलेख 'स्वामीनाथन : संपूर्ण मैत्री का दुर्लभ अनुभव' में स्वामीनाथन के बहुआयाम व्यक्तित्व के बहाने उनके रचना-संसार की तलाश करते हैं और अंततः इनग्रिड ऑल का पुस्तकांश प्राचीन चित्रकला (भारतीय) की बारीकियों और सूक्ष्मता को दर्शाता है।

— कलाधर, पूर्णिया

● यह अंक अनेक दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। 'सौ साल के सन्नाटों की आवाजें', स्वामीनाथन को कथाकार निर्मल वर्मा की श्रद्धाजलि, पुष्पा सक्सेना की कहानी 'पंख कटी चिड़िया', धुवनारायण गुप्त और संजय चतुर्वेदी की कविताएं मन पर गहन और आत्मीय प्रभाव छोड़ती हैं। रचनाओं का क्रम अत्यंत ही युक्तिसंगत है।

— जगदीश विकल, मोतिहारी

● देवी प्रसाद मिश्र का लेख बेहद पसंद आया। अमृता शेरगिल, यामिनी राय, रवींद्रनाथ ठाकुर, अवनींद्रनाथ ठाकुर, हेब्बार, सूजा और वसुंधरा तिवारी आदि की कृतियों को यदि रंगीन रूप में प्रकाशित करते तो यह अंक अद्वितीय हो जाता।

विनती है कि दुर्लभ चित्रों को कृपया वास्तविक रंगों में ही प्रकाशित करें। इसके लिए पुस्तक की कीमत भी बढ़ानी पड़े तो कम है। अजंता की कलाकृतियों पर इनग्रिड ऑल का लेख भी अच्छा था। परंतु रंगीन चित्रों की कमी सालती रहती है। तृतीय मुखपृष्ठ पर एक रंगीन चित्र देकर इस कमी को भरने का भरसक प्रयास किया है। 'वंशक अच्छा बनना

पर', लेख में श्रीप्रसाद जी ने वर्तमान बाल साहित्य पर करारा एवं उचित प्रहार किया है।

— अजेश कुमार, जमालपुर

बाल साहित्य पर विशेषांक निकालें

● इस बार बाल-साहित्य पर महज औपचारिकतावश आपने दो लेख दे दिए हैं। यदि साल में एक अंक पूरी तरह बाल साहित्य और बच्चों को समर्पित कर दें, यह एक दस्तावेजी कार्य होगा।

'तुकबंदी का शिकंजा' लेख में जरूरी प्रश्न उठाए हैं। आज के बच्चे प्रौढ़ बच्चे हो गए हैं और उनकी मानसिकता गुड़डे-गुड़ियों वाली नहीं रह गई है। इस स्थिति में बाल कवियों का दायित्व बढ़ गया है। अतः बाल कविताओं में अभिनव प्रयोग अपरिहार्य लग रहा है। श्रीप्रसाद का लेख भी विचारणीय था। बाल कहानी पसंद आई। बाल कविताएं न पाकर निराशा हुई। अब हम यह उम्मीद करेंगे कि अगला नवंबर अंक आप पूरी तरह बच्चों पर ही केंद्रित रखेंगे। धुवनारायण गुप्त की कविताओं ने ताजगी का एहसास कराया, गज़लें अच्छी थीं। निर्मल वर्मा

का संस्मरण हृदयस्पर्शी था।

— सुनील कुमार सुमन,
अरेराज धाम

● रमा सिंह की कहानी 'बुक मार्क' बहुत मार्मिक लगी। प्रेमचंद की कहानी 'गुल्ली डंडा' से 'बुक मार्क' तक वही वर्ग-भेद चल रहा है और गहराता जा रहा है, संवेदनाएं शून्य होती जा रही हैं।

— बंशीलाल परमार,
सुवासरा

● श्रीप्रसाद एवं देवेन्द्र कुमार 'देवेश' के लेख के लिए एक बार पुनः बधाई स्वीकारें। बाल साहित्य के सबसे महत्वपूर्ण वृक्ष पर उन्होंने इशारा किया है। आज बाल पत्रिकाओं के बाल-पाठक, बड़ों की लेखनी और विचारों को अपने ज्ञान-विज्ञान, मनोरंजन, शिक्षा के लिए परोसा गया पाते हैं। उनकी अपनी अभिव्यक्तियां तथा समस्याएं यथावत पड़ी रहती हैं। इन दोनों आलेखों में 'चकमक' बाल मासिक का जिक्र न पाकर दुख हुआ 'चकमक' बच्चों की भावनाओं, उद्गारों, कलाकृतियों को हू-ब-हू उनके लिए प्रस्तुत करता है। तुकबंदियों से बच्चे उकता गए हैं और व्यावसायिक कामिक्सों का मोहजाल उनके दिमाग को अपने शिकंजे में

कसता जा रहा है। बाल साहित्यकारों को इस दिशा में सोचना होगा! पुष्पा सक्सेना की कथा मार्मिक रही। हंसराज रहबर, पदुमलाल प. बख्शी पर आलेख छापकर आपने जिज्ञासु पाठकों पर उपकार किया है। कविताएं, गज़लें बहुत अच्छी रहीं।

— अनवर सुहैल, सरगुजा

रूपों में अरूप की
खोज

● इस अंक में दिए गए लेख मैंने पढ़े। उनमें रोचकता का जो आभास हुआ वह अन्यत्र दुर्लभ है। चित्रकला से संबंधित लेख 'रूपों में अरूप की खोज', 'सौ साल के सन्नाटों की आवाजें', 'अंधकार के आंचल में रंगमाला' आदि लेख बहुत ही सुरुचिपूर्ण एवं ज्ञानवर्धक लगे। इतना ही नहीं, ऐसी कम मूल्य की बड़ी पत्रिका मुझे पहली बार हाथ लगी। यदि आप इसमें एम.एफ. हुसैन, राजा रवि वर्मा तथा लियोनार्दो द विंसी जैसे चित्रकारों को भी स्थान देते, तो बहुत अच्छा होता। इससे वर्तमान समय में घटता हुआ कला का महत्व बढ़ता तथा छात्रों की रुचि बढ़ती क्योंकि इस प्रकार की कोई भी पत्रिका बाजार में

उपलब्ध नहीं है। ऐसे समय में यह सागर में मोती का कार्य करेगी।

— लक्ष्मण बाबू, गोरखपुर

● लगभग चकित कर देने की हद तक मुखपृष्ठ पर प्रकाशित जगदीश स्वामीनाथन की कलाकृति ने प्रभावित किया। वाकई यह एक रेखांकित करने योग्य तथ्य है कि जगदीश स्वामीनाथन उन स्थानीय आधुनिक भारतीय चित्रकारों में शीर्ष पर थे जो बेहद पढ़ाकू होने के साथ-साथ भारतीय कला के प्रतीकों के प्रति एक लड़ाकू आग्रहशीलता का पर्याय होते जा रहे थे। हालांकि जिन भारतीय प्रतीकों का प्रयोग स्वामीनाथन ने किया, वे सभी पारंपरिक ही हैं, किंतु उनके आधुनिक संदर्भ और वैचारिक व्याकुलता से भरे कला-आग्रह दुर्लभ हैं।

— राजकुमार कुंभज, इंदौर

● चित्रकला पर देवी प्रसाद मिश्र का आलेख और निर्मल वर्मा की स्वामीनाथन के साथ यादें बहुत अच्छी लगीं। लेकिन सबसे सुंदर इंग्रिड ऑल का निबंध था। जैसे एक कविता में शब्द धड़कता रहता है . . . एक आलोचना की तरह नहीं, बल्कि एक रचना की तरह पढ़ गया इसे। अजंता के जादू को

— उसके रंगों, रेखाओं, आकारों को—सिर्फ उद्घाटित करता नहीं, न पुनर्सृजित करता बल्कि स्वयं एक जादू होता हुआ। एक ऐसे जादुई कैमरे की तरह जो विचार को भी एक बिंब में बदलकर शब्दों में रख दे, सिर्फ जो है उसे ही नहीं जो नहीं है उसे भी — जैसे धूप। यहां तक कि वनस्पतिहीनता भी एक सकारात्मक उपस्थिति की तरह मौजूद है।

— कुमार अरुण, सारण

● 'अंधकार के आंचल में रंगमाला' शीर्षक से प्रकाशित पुस्तकांश पढ़कर भाव-विभोर हो गया। इंग्रिड ऑल की पुस्तक के हिंदी अनुवाद की जितनी भी सराहना की जाए, वह थोड़ी ही होगी। अनुवादक अरुण प्रकाश को सुरेश सलिल ने साधुवाद तो दिया ही है (पृ. 41), पाठक की ओर से भी उन्हें (अरुण जी) उन की सफलता पर हार्दिक बधाई। ऐसा प्रतीत होता है कि अरुण जी स्वयं अजंता में प्रविष्ट होकर अपने ऊपर पड़ने वाले प्रभावों को, पाषाण पर उकेरी मूर्तियों की भाव-भंगिमाओं का तथा उनके रंग-रूप का सरल, सरस और सात्विक दर्शन करा रहे हैं, अपने चुनिंदा शब्दों के माध्यम से। अनुवाद इतना जीवंत और इतना सजीव हो

सकता है, इतना मनमोहक हो सकता है, इतना मार्मिक हो सकता है—यह कल्पना करना भी मुश्किल लगता था।

स्व. पदुमलाल पन्नालाल वख्शी का लेख 'अपनी बात' पढ़कर लगता है वह आज भी हमारे इर्द-गिर्द घूम रहे हैं। स्वामीनाथन के संबंध में निर्मल जी के संस्मरण श्याम सुंदर घोष की संस्मरणात्मक टिप्पणियां भी हृदय को छूने वाली हैं। बाल साहित्य पर देवेश जी का लेख स्तरीय है। श्रीप्रसाद बाल साहित्य पर खुलकर लिख पाए हैं। कविताएं तो कवियों की संवेदनाओं की सूचक हैं, उनकी अनुभूतियों का शब्दों में मार्मिक वर्णन है।

— ज्ञानप्रकाश सक्सेना, मथुरा

● रमा सिंह की कहानी 'बुक मार्क' में दो स्थानों पर 'गोदरवाना' शब्द का प्रयोग हुआ है, वह वास्तव में 'गोदरमना' शब्द है। इसके साथ ही रहबर जी पर संस्मरण, बाल साहित्य पर श्रीप्रसाद की टिप्पणी, 'पंख कटी चिड़िया' और लोककला पर कही गई बातें अच्छी लगीं।

— बजरंग बहादुर सिंह, अंबिकापुर

आखिर क्यों ?

● अक्टूबर, 94 के अंक में ज्योतिष जोशी की कहानी 'ऐसा भी एक आदमी' पढ़ने का सौभाग्य मिला। कहानी अच्छी थी—इसमें संदेह नहीं। परंतु मेरे लिए कहानी का विशेष संदर्भ है। मेरा एक साथी पूर्णतया तो नहीं, पर अंशतः इसी व्यवहार का है। हालांकि वह सुलझे विचारों का व्यक्ति है।

शायद इसीलिए कहानी के नायक से मुझे स्नेह है—सहानुभूति है, जैसा कि कहानी के अंत से पहले तक लेखक यानी इनका भी नायक से वैसा ही लगाव है। यहां तक सब ठीक-ठाक है परंतु मुझे एतराज है— कहानी में लिखे अंतिम वाक्य से। मैं क्षमा चाहते हुए लिखना चाहता हूं कि लेखक का रवैया अपनी कहानी के नायक के प्रति इस वाक्य में परिवर्तित हुआ लग रहा है। यहां पर लेखक भी अन्य लोगों की तरह ही उसका मखौल उड़ाता प्रतीत हो रहा है— और जबकि वह कहानी के पाठकों से संबंधित होकर यह कहता है तो वह कहीं अधिक सार्वजनिक करता है अपने द्वारा उड़ाए गए इस मखौल को।

अधिक स्पष्ट करूं तो अंत के वाक्य से पहले तक की कहानी में लेखक पाठकों की अपने नायक के लिए सहानुभूति अर्जित करने की कोशिश तथा यह स्पष्ट करने की कोशिश की है कि समाज में पाए जाने वाले इस प्रकार के आदमी के व्यवहार के पीछे एक परिस्थिति होती है। परंतु अंतिम तथा मात्र एक वाक्य में लेखक अपने इस प्रयास को स्वयं निष्फल करने का प्रयास करता है।

मैं यह अधिकार तो नहीं जता सकता कि आप मेरे लिए यह स्पष्ट करें कि आखिर ऐसा क्यों है। परंतु मैं कारण जानने की आशा रखता हूं कि आखिर आपने यह अंतिम वाक्य क्यों लिखा? जबकि इसके बिना कहानी अति सुंदर बन पड़ती थी।

— सुरेश बरनवाल निर्मल, टमकोर

कला पर अच्छे लेख

● देवी प्रसाद मिश्र का कला विषय पर लेख 'सौ साल के सन्नाटों की आवाजें,' गहरी जानकारी से ओतप्रोत एवं खोजपरक लगा। कला के शत वार्षिकी पर प्रस्तुत यह प्रयास

सराहनीय व सामयिक है। चित्रकार जगदीश स्वामीनाथन पर केंद्रित गोविंद प्रसाद का आलेख स्वामी जी के बारे में पर्याप्त जानकारीदायक लगा। स्वामी से निर्मल वर्मा की गहरी दोस्ती के बारे में जानना भी एक सुखद अनुभूति थी।

इस अंक की गुंजलें और कविताएं भी पसंद आईं पर ध्रुवनारायण गुप्त की प्रेम कविताएं विशेष तौर पर पसंद आईं। 'कैसा होता' कवि की कल्पनाशीलता की सशक्तता का आभास दिलाता है। रमा सिंह की कहानी 'बुक मार्क' अच्छी लगी। लेखन की सहज सुबोध शैली और कहानी में प्रयोग किए गए सरल शब्दों (अंग्रेजी शब्दों को छोड़कर) ने कहानी को बेलाग पढ़ जाने को प्रेरित किया।

— कुमार पुष्पेश रंजन, भागलपुर

● वस्तुतः यह अंक पिछले कई अंकों से बेहतर बन पड़ा है। पुष्पा सक्सेना की कहानी 'पंख कटी चिड़िया' अत्यंत स्तरीय लगी। अधिकांश कविताएं मनभावना लगीं। कविताओं की संख्या कुछ और बढ़ाएं।

— जयप्रकाश मिश्र, शिवहर

पांच कविताएं : केदारनाथ अग्रवाल

एक

मैं औ मेरी कविताओं ने
अबकी पहली बार
काव्य लोक में
बड़े चाव से/रंग-विरंगी होली खेली
परम पुरातन
मौनी बैठे टुन्टुनिया से
और किशोरी केन से,
रंग अबीर गुलाल डालकर।

बची न कोई शिला

कामिनी काव्य रूप पा जाने से
बचा न कोई वृक्ष मोर बन जाने से
बचा न कोई एक पखेरू
छंद ताल गति पा जाने से।
उधर केन के पास पहुंचकर,
हमने सबने
उसका अरुणिम रूप संवारा,
उसे तरंगित किया
काव्य की ललित पंक्तियों से लहराया
आत्म विभोर हुए,
मद छाके
हम भूल गए दुख-द्वंद्व
समय की मार के!

बांदा-27.3.94

दो

जीना
वही जीना है—
सत्यकर्मों
देह का जो
निकला पसीना है
और तना सीना है।

बांदा 22.3.94

तीन

चेता
नैया खेता है।
अनचेता तो रेत है।

बांदा 23.6.94

चार

वाह वाह रे पानी-पंडित
आए भी तो
भूले-भटके कई दिनों पर
गगन महल में छाए
जल्दी-जल्दी गाल फुलाकर
शंख बजाकर
चंदन चाउर छिड़क-छिड़ककर,
फौरन वापस चले गए —
अपने साथ लिए चपला को
खट-खट करते हुए खड़ाऊं
सिर के ऊपर से।

बांदा 23.6.94

निर्माण के स्वर

कि हम भी गुनगुनाएंगे
गले से जिंदगी अपनी
स्वरो से रस चुआएंगे
बड़े मैदान के ऊपर
जहां हैं आम, महुए के खड़े तरुवर
लिए पतझर
नई कोपल—नई कोयल
नई बौरें—नए भौरे बुलाएंगे
वहीं पर मोद की मुरली
मधुरतम हम बजाएंगे
वसंती वासना के पग
पवन पर हम नचाएंगे
कि हम भी गुनगुनाएंगे
पुलक से पार लगने को
स्वरो के पुल बनाएंगे
समय के सिंधु के ऊपर
खड़े होकर
नए निर्द्वंद्व हाथों से
समुत्सुक हम बजाएंगे
अरुण यौवन तरुण जीवन
सृजन के, स्वर्ग के सपने सजाएंगे
करोड़ों कर्म के उत्सव
मगन मन हम मनाएंगे।

1954 की अधूरी कविता 31.5.94 को पूरी की।

...और भी, बरसों भी

केदारनाथ अग्रवाल निराला की परंपरा को ज्यादा वास्तविक धरातल पर लाने वाले, उसे पुख्ता आधार और व्यापकता देने वाले कवियों में हैं।

प्रकाश मनु

केदारनाथ अग्रवाल ने कहीं लिखा है, 'मेरी प्रगतिशीलता औरों की प्रगतिशीलता से भिन्न रही है—क्योंकि मैं पार्टीवाद को नहीं मानता...' और कोई ताज्जुब नहीं कि केदार जी की कविताएं पढ़ने के बाद आप करीब-करीब इसी निष्कर्ष पर पहुंचें कि उनकी शख्सियत और 'प्रगति का ग्राफ' बाकी प्रगतिवादियों से एकदम अलग रहा है। छायावादी दौर को छोड़ दें तो अकेले सौंदर्य, प्रेम और प्रकृति पर इतनी कविताएं — इतनी अच्छी कविताएं बहुत कम कवियों ने लिखी होंगी — और इतनी विविधता, इतना खुलापन तो शायद छायावादी कविता में भी न हो, जिसे मूलतः प्रेम और सौंदर्य का स्वच्छंदतावादी काव्य माना जाता है। कहा जा सकता है, प्रेम और सौंदर्य के बारीक लयात्मक चित्र उकेरने में निराला के बाद अकेले शमशेर हैं जिनसे उनकी तुलना हो सकती है। दूसरी ओर आम आदमी की बीहड़ मुश्किलों और यथार्थ को उसकी पूरी जटिलता के साथ धाहने में केदार जी का जवाब नहीं। लेकिन केदार जी की आम जीवन पर लिखी कविताएं भी ऐसी हैं कि उन्हें आप कहीं से भी उठाकर देख लें, पहला अहसास यही होगा कि वह जो भी कह रहे हैं, अपनी नजर से देखकर कह रहे हैं। ... यानी कविता नारा नहीं है और न वाहवाही लूटने के लिए दूसरे के दुख को सिर्फ बहाने और उद्दीपन के लिए, इस्तेमाल किया गया है। यथार्थ के ऐसे 'अहेरी' जो हों सो हों, कम से कम केदार नहीं हैं।

जो आदमी बार-बार उनकी कविताओं के बीच से सिर निकालकर बाहर आता है, वह हमारा खूब देखा-भाला हुआ, हमारे बीच का आदमी है—या फिर हमारा कोई हमसफर, हमारा भाई, हमारे भाई का भाई, हमारे दोस्त का दोस्त। केदार की कविता जीवन में गहरे धंसी हुई कविता है, इसलिए बार-बार हारकर भी वह बैठती नहीं है। कविता लिखना उनके लिए सृजन की तकलीफ की एक बड़ी परंपरा से जुड़ना है:

हम लेखक हैं कथाकार हैं
हम जीवन के भाष्यकार हैं
हम कवि हैं जनवादी।

चांद, सूर, तुलसी कबीर के
संतों के हरिचंद वीर के
हम वंशज बड़भागी।

शायद इसी बड़ी परंपरा से जुड़े होने का बड़प्पन 'समय की धार में धंसकर खड़े' इस बड़े कवि से सहज ही कहलवा लेता है:

मैं हूं अनास्था पर लिखा
आस्था का शिलालेख
... मृत्यु पर जीवन के जय की घोषणा।

यों केदार यह न कहते, तो भी उनकी कविताएं तो यह कहती ही हैं—और कई बार बिन बोले कह देती हैं।

अक्सर केदारनाथ अग्रवाल अपनी व्यक्तिगत स्थितियों और तकलीफों को छिपाकर अपनी बात कहते हैं, पर कहीं-कहीं वे छिपाए नहीं छिपीं और कवि का व्यक्तित्व ही नहीं, भीतरी उद्वेग भी कांच की-सी धार लिए बाहर चला आता है। नागार्जुन के बांदा आने पर लिखी गई कविता में उनके भीतरी अकेलेपन का त्रास बड़े करुण ढंग से खुला है :

यह बांदा है,
और यहां मैं रहता हूं
जीवन यापन कठिनाई से ही करता हूं
कभी काव्य की कई पंक्तियां
कभी आठ-दस-बीस पंक्तियां
और कभी कविताएं लिखकर
प्यासे मन की प्यास बुझा लेता हूं रस से
शायद ही आता है कोई मित्र यहां पर
शायद ही आती हैं मेरे पास चिट्ठियां?

मेरे कवि-मित्रों ने मुझ पर कृपा न की है,
इसीलिए रहता उदास हूं खोया-खोया ...

केदार इस त्रास को मन की खामखा उलझी हुई स्थितियों के प्रयोगवाद में नहीं बदलते। वह अपने दुख-दर्द में डूबे और जन-समाज की हालत देखकर ऊबे-ऊबे भले हों, लेकिन कुंठा के किसी अंधविचार में नहीं उतरते। उनकी पीड़ा उन्हें तपाती है और वह और अधिक सरल होते जाते हैं। मित्र कवि नागार्जुन से मिलने की उनकी आकुलता में दरअसल मिथिला की प्यारी धरती में व्यापे छंदों और वहां के गढ़-पोखर के पानी, दुखमोहन और मोहन मांझी से मिलकर नैन जुड़ने की गहरी व्याकुलता भी शामिल है :

और तुम्हारे लिए पसारे बांह खड़ा हूं
आओ साथी गले लगा लूं
तुम्हारी मिथिला की प्यारी धरती को
तुममें व्यापे विद्यापति को
और वहां की जनवाणी के छंद चूम लूं
और वहां के गढ़-पोखर का पानी छूकर नैन जुड़ा लूं
और वहां के दुखमोहन, मोहन मांझी को मित्र बना लूं
और वहां के हर चावल को हाथों में ले हृदय लगा लूं ...

इन पंक्तियों में—पाठक गौर करेंगे, छंद न होते हुए भी बड़ी बारीक गीतात्मक लय है। और यह बात सिर्फ इसी कविता पर नहीं, केदार जी के अधिकांश लेखन पर खरी उतरती है। शायद इसीलिए केदार ऐसे कवि हैं जिनकी कविता में कोई शब्द निकाला या डाला नहीं जा सकता। उनकी कविताएं अक्सर पूरी की पूरी याद हो जाती हैं। आप कह सकते हैं, प्रगतिवादी कविता में जिस तरह घुमक्कड़ी और फक्कड़ता सबसे ज्यादा नागार्जुन में है, भाषा के गंवई ठाठ और उनकी अर्थ-छवियों का इस्तेमाल त्रिलोचन के यहां है, शमशेर चित्रभाषा और ठोस बिंबों के कवि हैं, उसी तरह सरलता या सादगी केदारनाथ अग्रवाल की कविताओं का प्राण है जो खुद-ब-खुद प्रगीतात्मकता में ढलने को उत्सुक दिखाई देती है। अकेले केदारनाथ अग्रवाल ने जितने सीधे, सहज और मन की मिठास से भरे-पूरे गीत लिखे हैं,



शमशेर बहादुर सिंह, केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन और अशोक त्रिपाठी
भोपाल में आयोजित 'महत्व : केदारनाथ अग्रवाल' कार्यक्रम के दौरान

उतने प्रगतिवादी कविता में कम ही लिखे गए। केदार के गीतों की तारीफ यह है कि वे सभी फार्मों को तोड़कर भी गीत हैं। केदार चाहे अपने गीतों का साहित्यिक मूल्य खुद ज्यादा न आंकते हों, लेकिन ये गीत न सिर्फ प्रगतिवादिता की बनी-बनाई चौखटों को स्वीकार करने से इंकार करते हैं, बल्कि एक तरह से मानव-मुक्ति के गीत हैं जिनमें लोकगीतों का-सा रस उमड़ा पड़ा रहा है :

मांझी! न बजाओ वंशी मेरा मन डोलता
मेरा मन डोलता है, जैसे जल डोलता
जल का जहाज जैसे पल-पल डोलता
मांझी! न बजाओ वंशी मेरा प्रन टूटता
मेरा प्रन टूटता है, जैसे तन टूटता ...

कहना न होगा कि प्रगतिवाद की तो छोड़िए, छायावाद तक में 'मुक्ति के स्वप्नों' के बावजूद सचमुच मुक्त लय और कल्पना के ऐसे गीत ज्यादा नहीं लिखे गए।

दूसरी ओर क्रांति का रोषभरा सैलाब देखना हो या विद्रोह का धन-गर्जन—वह इतने सहज छंद में उसे पिरो देते हैं कि शब्द आपके हाथों से छूटते ही नहीं :

घन गरजे जन गरजे
बंदी सागर को लख कातर
एक रोष से
घन गरजे जन गरजे
क्षत-विक्षत लखहिमगिरि अंतर
एक रोष से
घन गरजे जन गरजे।

अंतहीन तपस्या के बाद किसान का फसल काटना भी तो एक 'क्रांति' है—जीवन का एक जिंदा आवेश। और इसकी लय भी केदार ने खूब पकड़ी है :

काटो काटो काटो करबी
साइत और कुसाइत क्या है
जीवन से बढ़ साइत क्या है
काटो काटो काटो करबी
मारो मारो मारो हंसिया।

इस गीत में शब्दों और लय का चुनाव अद्भुत है। 'पाटो पाटो पाटो धरती, काटो काटो काटो करबी' कहते ही हाथों में हंसिया लिए, फसलें काटते सैकड़ों हाथ सामने न आ जाएं, यह हो ही नहीं सकता।

यहां एकदम सपाटबयानी है। लेकिन सपाटबयानी भी

अगर एक चुस्त संयोजन में ढली हो तो एक मुकम्मल बिंब की जगह ले सकती है, केदार ने यह साबित कर दिखाया है।

केदार की कविता यथासंभव रहस्यात्मक गुंफनों से बचती हुई यथार्थ की कठोर जमीन पर चलती है। यथार्थ वह अपनी कविता में लाते नहीं हैं, उनकी कविता खुद-ब-खुद यथार्थ के बीच से जन्म लेती है—किसी सख्तजान, सदाबहार पौधे की तरह। यहां तक कि उनका सौंदर्य, उनका प्रेम भी आकाशी नहीं, इसी जमीन का है और इसीलिए सरल, अटपटी शक्तों में भी हमें अपना-अपना-सा लगता है। केदार के यहां यथार्थ किसी फार्मूले के तहत नहीं आया, इसलिए यथार्थ चित्रण में विविधता भी बहुत है—खुद जीवन के विविध अर्थों, विविध स्तरों की तरह। वैसे मोटे तौर से केदार के यहां यथार्थ का इस्तेमाल दो तरह से होता है। एक तो उसका दबाव या तनाव ज्यादातर कविताओं की संरचना को पुख्ता करता है और दूसरे, केदार के कविता संसार में ऐसे स्थल तमाम हैं जहां केदार खुद हमें यथार्थ की तमाम शक्तों तक ले जाते हुए कविता के पाठ को चौड़ा करते हैं। केदार के चित्रण टाइड कभी नहीं होते, इसलिए कि वह अक्सर बहुत गहरी आंख से देखी गई चीजें ही कहते हैं—भावावेश और अतिरंजनाओं से बचते हैं। गांव के लोगों को अनादिकाल से ‘कर्ज की सूंड’ में लपेटे, अंधविश्वास के सहारे अपनी सत्ता जमाए गांव के महाजन का जो चित्र उन्होंने शब्दों में उतारा है, उसमें उसकी ‘क्रूरता’ और ‘हास्यास्पदता’ एक साथ चली आई है :

वह समाज के त्रस्त क्षेत्र का मस्त महाजन
गौरव के गोबर गणेश-सा मारे आसन
नारिकेल से सिर पर बांधे धर्म मुरैठा
ग्राम बधूटी की गोरी गोदी पर बैठा
जीभ निकाले, बात बनाता, करुणा धोले ...

असल में गांव के महाजन के इस ‘शोषण कांड’ की जड़ों में उतरकर केदार हमें आर्थिक मजबूरियों के उस दैत्याकार पहिए की शक्ति दिखाते हैं जो सदियों से लोगों को पीसता आया है, सूंड लपेटे है कर्ज की ग्रामीणों को / मुक्ति अभी तक नहीं मिली है इन दीनों को। शोषण का, गरीबी का यह पहिया अगर अब भी हमें पीसता हुआ चला जा रहा है तो उसके लिए वे भी जिम्मेदार हैं जो अपने छोटे-छोटे सुख-स्वार्थों में धुत हैं और ‘विचार’ से उनका रिश्ता करीब-करीब काट दिया गया है। बहुत नजदीक से खींचा गया, बुदेलखंड के हट्टे-कट्टे आदमियों का यह ‘नितांत अनौपचारिक’ चित्र देखिए, जिनकी सारी ताकत फिजूल के कामों में खर्च होती है :

हट्टे-कट्टे हाड़ों वाले
चौड़ी-चकली काठी वाले
थोड़ी खेती-बाड़ी रक्खे
केवल खाते-पीते, जीते
कत्था, चूना, लौंग, सुपारी
तंबाकू खा, पीक उगलते

चलते-फिरते बैठे ठाढ़े
गंदे यश से धरती रंगते।

केदार ने गजब की आत्मीयता के साथ बुदेलखंडी लोगों के चेहरे आंके हैं। यह कुव्वत उन्हीं में है कि ‘गंदे यश से धरती रंगते’ जैसे फिकरे वह कहें, फिर भी उनका अनन्य प्रेम प्रकट हुए बगैर न रहे। ... लेकिन इतनी तटस्थता भी उन्होंने जरूर रखी है कि कह सकें :

गुड़गुड़ गुड़गुड़ हुक्का पकड़े
खूब धड़ाके धुआं उड़ाते,
फूहड़ बातों की चर्चा के
फौवारे फैलाते जाते।

या फिर—घंटों आल्हा सुनते-सुनते/सो जाते हैं मुरदा जैसे

इसी तरह केदार की ‘कानपुर’ एक बिल्कुल भिन्न बनावट की अच्छी कविता है, जो भाषा के ‘देसी ठाठ’ की वजह से अलग पहचान में आ जाती है। सीधे-सादे शब्दों में मजदूर की जिंदगी के जैसे विराट बिंब इस कविता में हैं, वैसे अन्यत्र कम ही मिलेंगे। यह कविता सच में उन कविताओं में है, जो हमें ‘देखना’, सिखाती हैं!

इस तरह की ‘देसी भाषा के ठाठ’ वाली कविताएं यह साबित करने के लिए काफी हैं कि हालांकि केदार के यहां शमशेर या मुक्तिबोध जैसे संश्लिष्ट प्रभाव वाले चित्र नहीं हैं (और उनके कविता-संसार में इसकी तलाश बेमानी है।) पर एक तरह की निर्भय सरलता उनका अस्त्र है और इस सरलता से कितनी दूर तक मार की जा सकती है, यह कौशल केदार के यहां भरपूर देखा जा सकता है। बेशक उनकी तमाम कविताएं सपाट हो गई हैं और उनकी अति-सरलता खिजाती भी है, पर केदार की यह स्थिति उन्हें कुछ-कुछ संत कवि तुलसीदास के निकट ले जाती है जहां साधारण, इतिवृत्तात्मक पंक्तियों वाली अभिधा के जंगल के बीच अचानक ‘कंगन के नग में परछाहीं’ जैसा विलक्षण काव्य-कौशल प्रकट होता है और हम अवाक छूट जाते हैं।

कुछ आलोचकों को (यहां तक कि केदार की कविता के पक्षधर डा. रामविलास शर्मा को भी) शिकायत है, केदार की कविता में व्यंग्य नहीं उभरा। उन्हें केदार की ‘पैतृक संपत्ति’ कविता पढ़नी चाहिए जिसमें गरीबी का ‘दारुण व्यंग्य’ गरीब की पीड़ा को बेतरह उभार देता है :

जब बाप मरा तब यह पाया
भूखे किसान के बेटे ने :
घर का मलबा, टूटी खटिया
कुछ हाथ भूमि—वह भी परती
चमरौंधे जूते का तल्ला
छोटी, टूटी, बढ़िया औंगी
दरकी गोरसी, बहता हुक्का
लोहे की पत्ती का चिमटा।
... दीमक, गोजर, मच्छर माटा —

ऐसे हजार सब सहवासी।
बस, यही नहीं, जो भूख मिली
सौगुनी बाप से अधिक मिली।

यानी व्यंग्य की बहुतायत चाहे केदार के यहां न हो, पर जहां इसकी जरूरत है, वहां यह खुद-ब-खुद चला आया है। इसी तरह अपने दोनों हाथ काटकर, ओस चाट-चाटकर जीने वाले बुद्धिजीवी वर्ग पर केदार का व्यंग्य बहुत पैना है :

धोबी गया घाट पर
राही गया बाट पर
मैं न गया घाट और बाट पर
बैठा रहा टाट पर
दोनों हाथ काटकर
जीता रहा ओस चाट-चाटकर।

यह 'आत्मव्यंग्य' वही कवि उपस्थित कर सकता है जिसके मन में रोटी और मेहनतकश आदमी के लिए गहरा सम्मान हो।

केदार जी यह अच्छी तरह जानते हैं कि घर में रोटी का आना संघर्ष भी है—भूख के खिलाफ संघर्ष। इस संघर्ष की तमाम शक्तें उनकी कविता में हैं। उन्हीं में एक बिंब—एक शक्तिशाली बिंब ऐसा भी है :

तेज धार का कर्मठ पानी
चट्टानों के ऊपर चढ़कर
मार रहा है
घूंसे कसकर
तोड़ रहा है तट चट्टानी।

केदार के यहां यह संघर्ष, यह क्षोभ, मेहनतकश आदमी का संकल्प और पसीना—ये सब बहुत बड़ी चीजें हैं। इतनी बड़ी कि बड़े-बड़े दर्शन, आदर्श और सिद्धांतों के रूपक उसके आगे बेचारे हैं। शायद इसीलिए केदार यह कहते हैं—और सिर्फ केदार ही डंके की चोट पर कह पाते हैं कि यह धरती न कृष्ण की है, न राम की, न भीम, सहदेव, नकुल की, न पार्थ, राव या रंक की! यह धरती तो सिर्फ किसान की है :

जो बैलों के कंधों पर
बरसात घाम में
जुआ भाग्य का रख देता है
खून चाटती हुई वायु में
पैनी कसी खेत के भीतर
दूर कलेजे तक ले जाकर
जोत डालता है मिट्टी को ...

यहां यह दर्ज करना जरूरी है कि केदार जी की शुरूआती कविताओं से लेकर बाद की लगभग हर दौर की कविताओं में मजदूरों के चित्र, मजदूरों की तकलीफ जरूर आती है। लेकिन खास बात यह है कि उनका आशावाद फिर भी उनका साथ नहीं छोड़ता। इस आशावाद की सबसे अच्छी झलक इस कविता में है जिसमें मजदूर के घर बच्चे

के जन्म लेने को केदार अपनी ही भाषा में व्याख्यायित करते हैं। इतनी तेज मार करने वाली शक्तिमयी कविताएं समूचे प्रगतिवादी काव्य में कम ही मिलेंगी :

एक हथौड़े वाला घर में और हुआ!
हाथी-सा बलवान,
जहाजी हाथों वाला और हुआ
सूरज-सा इंसान,
तरेरी आंखों वाला और हुआ!!
एक हथौड़े वाला घर में और हुआ!
माता रही विचार
अंधेरा हरने वाला और हुआ!
दादा रहे निहार :
सबेरा करने वाला और हुआ!!

प्रगतिवादी कवियों में शायद ही कोई हो जिसने केदार की तरह प्रकृति से इतना बेपनाह प्यार किया हो। केदार के भीतर प्रकृति का सौंदर्य इतना रच-बस गया है, वह इस कदर प्रकृति से प्यार करते हैं कि उसके बगैर न प्रेम की कल्पना कर सकते हैं, न सौंदर्य की। और प्रकृति सबसे पहले तो उनके लिए आस्था है—इसलिए कि पेड़ दरअसल पेड़ नहीं, आदमी के पुरखे हैं जिनसे हमने इस धरती पर रहना सीखा है :

पेड़ नहीं
पृथ्वी के वंशज हैं
फूल लिए
मानव के अग्रज हैं।

लिहाजा जीवन में आत्मविस्तार सीखना हो, तो इस धरती के बेटे से ही सीखा जा सकता है। उससे बड़ा 'बोधिसत्व' कोई और नहीं :

छांह छोड़कर चल दूंगा मैं
लेकिन जाते-जाते पहले
तुम्हें फूल-फल दे ही दूंगा
मैं तरु हूँ—धरती का बेटा।

यह आकस्मिक नहीं कि केदार की कविताओं में केन नदी बार-बार आती है—मानो वह केदार की कविताओं का पीछा करती हो। ... या फिर उनकी कविताएं केन की लहरों के सहारे-सहारे आगे बढ़ती हों! केदार केन के किनारे-किनारे बहुत घूमे हैं और उसे सोते-जागते तमाम शक्तों में देखा है, इसलिए नदी कभी उदास हो तो यह उनसे छिपता नहीं। तब वह उसे जगाने की भूल नहीं करते :

आज नदी बिलकुल उदास थी
सोई थी अपने पानी में
उसके दर्पण पर
बादल का वस्त्र पड़ा था
मैंने उसको नहीं जगाया,
दबे पांव घर वापस आया।

यही नदी कभी इतनी उत्फुल्ल होती है कि जी भरकर उनसे भेंटती

है। 'नितंबिनी, स्त्रोतस्विनी, जलधार से भरी नदी' का यों भरकर भेंटना और सूर्य का घंटों देखते रहना कवि को कभी नहीं भूलता। ... और कभी आप चाहें तो नदी को कांपता महसूस कर सकते हैं। इसका कारण भी केदार आपको बताएंगे :

चली गई है कोई श्यामा
आंख बचाकर, नदी नहाकर
कांप रहा है अब तक व्याकुल
विकल नील जल।

लहर-लहर के साथ झूमते हुए, संध्या के अधर चूमते, केन के किनारे घूमने की अनंत इच्छा केदार की कविताओं में कई रूपों में खुलती है। और जब वह अगल-बगल रेती के बीच केन किनारे बैठे होते हैं तो दुनिया का सारा वैभव उन्हें उसके मुकाबले तुच्छ लगता है : रेती पर ही पांव पसारे / बैठा हूं इस केन किनारे / इसी तरह आलंबन रूप में प्रकृति चित्रण के कुछ और बढ़िया उदाहरण केदार के यहां मिलेंगे। मसलन कचहरी के आगे खड़ा सेमल का पुरनिया पेड़ उनकी एक कविता में आकर यादगार 'एंटीक' बन जाता है।

यों केदार के यहां प्रकृति के प्रभाववादी चित्र ही ज्यादा हैं और उनका 'बेहतरीन चित्रकार मन' उन्हें रंगों से, उजाले से लबालब कर डालने का शायद ही कोई मौका छोड़ता हो। इसीलिए शायद केदार के प्रकृति काव्य की चित्रात्मकता सबसे अधिक खींचती है। उनकी तूलिका के आघात कभी-कभी मुलायम, कभी सख्त हो सकते हैं—मगर छोटे-छोटे चित्रों में बड़ी बात कहना उन्हें पसंद है। हरियाली के न रहने पर पहाड़ी का गंगा होना एक मुहावरा है, लेकिन केदार के यहां पहाड़ी का गंगापन शब्दों में एक अजीब मांसल प्रभाव के साथ खुलता है कि आप चमत्कृत हो उठते हैं :

चोली फटी सरस सरसों की
लहंगा गिरा फागुनी नीचे
चूनर उड़ी अकासी नीली
गंगी हुई पहाड़ी देखो।

और यही कौतुक वहां है जहां पानी, पानी न रहकर धूप में लेटे नौजवान की शक्ल लेने लगता है :

धूप पिए पानी लेता है सीना खोले
नौजवान बेटा है युग के श्रमजीवी का

यहां चित्रात्मकता गजब की है। प्रकृति को लेकर केदार की एक और बहुत महत्वपूर्ण कविता है—'चंद्रगहना से लौटती बेर'। खेत की मेड़ पर बैठा कवि फसलों को देख रहा है—लेकिन सिर्फ पौधे नहीं, समूचा जीवन उसकी आंखों के आगे आकर खड़ा हो जाता है :

एक बीते के बराबर
यह हरा ठिगना चना
बांधे मुरैठा शीश पर
छोटे गुलाबी फूल का
सजकर खड़ा है।

पास ही मिलकर उगी है
बीच में अलसी हठीली
देह की पतली, कमर की है लचीली,
नील फूले फूल को सिर पर चढ़ाकर
कह रही है, जो छुए यह
दूँ हृदय का दान उसको।

असल में केदार का प्रकृति को चाहना एक सच्चे किसान का-सा है। इसीलिए वनस्थली का हृदय चीरता सारस का 'टिरटों-टिरटों' स्वर सुनकर उनका मन होता है कि :

उड़ जाऊँ मैं
पर फैलाए सारस के संग
जहां जुगल जोड़ी कहती है
हरे खेत में
सच्ची प्रेम कहानी सुन लूँ
चुप्पे-चुप्पे

इन पंक्तियों में छोटे बच्चे की-सी जो सरलता है, उत्सुकता है वह किसी बड़े कवि में ही हो सकती है, जिसने मन को मांज लिया है। केदार के यहां प्रकृति के होने के मायने ही यही हैं कि आप जब-जब उसके निकट जाएं, अधिक निर्मल और संवेदनशील होकर लौटें। अगर गौर से देखें तो उनकी निष्कपट सरलता और विनम्रता ही नहीं, तेजस्विता का राज भी यहीं कहीं मिलेगा।

केदार की कविता जीवन को दूर-दूर से छूती हुई कविता नहीं, जीवन के संपूर्ण भोग की कविता है। प्रकृति के अलावा यौवन के छलछलाते प्यार और सौंदर्य की कविताएं उन्होंने खूब रुचि से लिखी हैं। जनवादी कवियों में इतना सौंदर्यवादी कवि शायद ही कोई दूसरा रहा हो—त्रिलोचन नहीं, नागार्जुन नहीं, शिवमंगल सिंह सुमन और रामविलास शर्मा तक नहीं! इस मामले में केवल शमशेर से उनकी तुलना हो सकती है। लेकिन केदार जैसा खुलापन शायद शमशेर के यहां भी न हो, इसलिए कि शमशेर के यहां सौंदर्य के साथ एक तरह की सकुचाहट है, जिससे केदार दूर निकल आए हैं। यों केदार का सौंदर्य का अहसास भी ज्यादातर प्रकृति से जुड़ा हुआ है प्रकृति ही किसी सुकुमार सहयात्री की तरह उन्हें सौंदर्य के गूढ़ रहस्यों तक ले चलती है। लेकिन कहीं-कहीं 'रूप का प्रश्वास' उन्हें आकाश और वातास से अधिक अपने निकट खींच लेता है। असीम सौंदर्य की एक लहर उन्हें नदी या समुद्र से नहीं, देह से उमड़ती नजर आती है जो 'छापकर छा गई/फैल गई मुझ पर'। इसी बात को उन्होंने बहुत आहिस्ता से एक और कविता में सरका दिया है :

जलाशय के
सौंदर्य की बंद हथेलियां
आज जब
मृणाल पर खुलीं

सूर्य ने
अलियों ने
तुमने
उन्हें चूमा
मैंने
तुम्हें चूमा।

यहां सौंदर्य लोकोत्तर सौंदर्य बन जाता है और किसी शांत संगीत की तरह मन में देर तक बजता रहता है।

गौर करने की बात यह है कि छायावाद में प्रकृति और सुंदरता की जो एकरसता थी, केदार अपने तई उसे आगे चलाते आए हैं। हालांकि केदार छायावादी सौंदर्य की सूक्ष्म अर्थभंगियों से इंकार न करते हुए भी, उसे रहस्य के कुहरजाल में नहीं धंसने देते। रेत में आधे गड़कर सौंदर्य को निहारती यह नजर देखिए :

चंपई आकाश तुम हो—
हम जिसे पाते नहीं
बस देखते हैं;
रेत में आधे गड़े
आलोक में आधे खड़े।

केदार के यहां सौंदर्य की कुछ इतनी बारीक, कोमल भंगिमाएं हैं कि 'लिरिकल' और सौंदर्यवादी कहे जाने वाले छायावाद में भी वैसे उदाहरण शायद ज्यादा न मिलें। दर्पण के आगे केश संवारती रूपमुग्धा की यह छवि एकदम ताजी है :

दर्पण में खड़ी हो तुम
वसंतोत्सव की मुद्रा में
फेंककर पीछे
शीशे से उतरकर नीचे जाता अंधकार
देखकर मुझे हो रहा है तुमसे प्यार।

लेकिन केदार यहीं नहीं रुकते। वह जल्दी ही इस प्यार को एक अधिक वयस्क और मैच्योर प्रेम की ओर मोड़ देते हैं और उसमें गृहस्थ जीवन का अनोखा रस भर देते हैं। घरेलू जीवन की छोटी-मोटी दिक्कतें और परेशानियां, छोटी-मोटी सुविधाएं और सुख भी इसमें अपने-अपने ढंग से रंग भरने लगते हैं :

हे मेरी तुम!
कल कमीज में बटन नहीं थे,
कुरता देखा तो आगे से फटा हुआ था,
धोती में कुछ दाग पड़े थे;
बक्स और अलमारी देखी
नहीं एक भी मिला तौलिया ...
मेजपोश पर धूल जमी थी
पुस्तक पर प्याला बैठा था
कापी पर औंधा गिलास था
पैसे की डिबिया में पैसा एक नहीं था

... अब बोलो, तुम कब आओगी
घर संवारने?

यानी प्रेम, केवल 'गुदगुदाना' और तैरना नहीं है, वह 'घर संवारना' भी है—और अभाव और मुश्किलों के बीच छोटे-छोटे सुखों की सुवास से, सुचारुता से घर संवारना है। इस गृहस्थ जीवन की तपस्या में वासना भी तपकर निर्मल हो जाती है। तब यह पुकार तक मैली नहीं लगती :

हे मेरी तुम सोई सरिता
उठो और लहरों से नाचो
तब तक जब तक
आलिंगन में नहीं बांध लूं
और चूम लूं
तुमको मैं मिलने आया बादल हूं!! ...

असल में 'हे मेरी' शीर्षक से केदार की तमाम कविताएं हैं जिनमें गृहस्थ जीवन का सुख छलका पड़ रहा है। छोटे-छोटे चित्रों में भी भारतीय दांपत्य जीवन अपनी विविधता और खूबियों के साथ चला आया है। भारतीय दांपत्य जीवन की आंतरिक आभा से सजी केदार की इन कविताओं का ठीक-ठाक मूल्यांकन होना अभी बाकी है।

केदार की भाषा अपनी है जिसे वह अपने तई बनाते, तोड़ते, फिर रचते हैं, उसमें तमाम मोड़, बीहड़ एकांत और सरस नदियां हैं। कभी केदार की भाषा एकदम सीधी-सहज, कभी बिंबधर्मी हो उठती है। लेकिन शब्दों के चयन का उनका कौशल शायद ही कहीं चूकता हो। कम से कम शब्दों में बड़ी से बड़ी बात कहने में वह निराला या शमशेर की तरह निपुण हैं और उनकी सीधी-सहज बात भी कभी अकलात्मक नहीं लगती, क्योंकि उस छोटी-सी बात के पीछे भी अहसास भरा-पूरा होता है। शमशेर के लिए लिखी गई केदार की एक कविता है, जिसमें सिर्फ चार पंक्तियों में एक न भूलने वाला चित्र खड़ा कर दिया गया है :

शमशेर—मेरा दोस्त
चलता चला जा रहा है अकेला
कंधे पर लिए नदी
मूंड पर धरे नाव।

केदार जी ने कभी अपनी कविता का—अपनी कविता के चरम लय तक पहुंचने का एक सपना देखा था। दुनिया के सब सपनों से बड़ा वह सपना यह था कि :

जैसे कोई सितारिया द्रुत सितार को बजाए
लय में पहुंचकर वह स्वयं लय हो जाए
फिर न वह सितार को बजाए
चलता हाथ ही बजाए ...
ओ मेरे संसार!
मैं यही तुमसे पाऊं
जब तक मैं जिऊं, तुम्हें बताऊं
न मैं रुकूं न कोई रोक पाए

केदारनाथ अग्रवाल का साहित्य

कालक्रम से प्रकाशित केदारनाथ अग्रवाल की रचनाओं में उनकी तीन प्रारंभिक कविता पुस्तकों का विवरण भी शामिल है, हालांकि वे अब उपलब्ध नहीं हैं। इनमें पहले और तीसरे संग्रह का केदार की साहित्यिक प्रतिष्ठा में ही नहीं, प्रगतिशील हिंदी कविता के उत्कर्ष में भी असाधारण योगदान है। *नींद के बादल* में, बकौल शमशेर 'एक नौजवान की रंगीन भावनाओं की सादगी' है जो 'अपने प्रति, अपनी कला और अपने पाठक के प्रति' कवि के 'बेहद ईमानदार व्यक्तित्व' का उदाहरण है। यह बात शमशेर ने उस पुस्तक की भूमिका में कही थी। अब इन तीनों संग्रहों की कविताएं *फूल नहीं, रंग बोलते हैं* और *गुलमेहंदी* में संकलित हैं। किस संग्रह की कौन-सी कविता इनमें से किस पुस्तक में है, इसकी सूची *गुलमेहंदी* के परिशिष्ट में उपलब्ध है।

अप्राप्य :

1. *युग की गंगा*, हिंदी ज्ञान मंदिर लि., बंबई, मार्च 1947
2. *नींद के बादल*, हिंदी ज्ञान मंदिर लि., बंबई, अगस्त 1947
3. *लोक और आलोक*, लहर प्रकाशन, इलाहाबाद, 1957

उपलब्ध साहित्य — (सभी के प्रकाशक : परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद)

कविता :

1. *फूल नहीं, रंग बोलते हैं*, अक्टूबर 1965
2. *आग का आईना*, जुलाई 1970
3. *गुलमेहंदी*, जनवरी 1978
4. *पंख और पतवार*, जनवरी 1979

5. *मार प्यार की थापें*, मई 1981
6. *बंबई का रक्त-स्नान*, सितंबर 1981
7. *हे मेरी तुम*, मई 1981
8. *कहें केदार खरी-खरी*, 1983
9. *जमुन जल तुम*, 1984
10. *अपूर्वा*, 1984
11. *बोले बोल अबोल*, 1985
12. *जो शिलाएं तोड़ते हैं*, 1986
13. *श्रम का सूरज* (सं. : डा. रामविलास शर्मा), 1986
14. *प्रगतिशील काव्यधारा और केदारनाथ अग्रवाल* (सं. : डा. रामविलास शर्मा), 1986
15. *आत्मगंध*, 1988
16. *अनहारी हरियाली*, 1990
17. *खुली आंखें, खुले डैने*, 1993
18. *पुष्पदीप*, 1994

उपन्यास :

19. *पतिया*, 1985

निबंध :

20. *समय-समय पर*, जुलाई 1970; 21. *विचार-बोध*, 1980;
22. *विवेक-विवेचन*, 1981

अनुवाद :

23. *देश-देश की कविताएं*, 1970

— ज. ति.

आयु में अपनी इस तरह बिताऊं। ...

और खुशी है कि केदार ने जो सपना देखा था, उसे सच भी कर दिखाया। अपना सारा जीवन करीब-करीब उन्होंने होसले से लिखते और जीते हुए एक 'तन्मय राग' में बदल डाला है। उन्हें विश्वास है कि : मैं जिऊंगा / कल भी / परसों भी / और भी, बरसों भी ... आश्चर्य नहीं कि उनकी सरलता में एक उत्कट दीप्ति और दृढ़ आभा भी है— और न सिर्फ अपनी कविता के लिए, बल्कि आगे आने वाले युग के लिए भी—जो मानो उनकी कविताओं से निकलकर बाहर आ खड़ा हुआ है, वह कह रहे प्रतीत होते हैं : मैं पहाड़ हूँ / और तुम / मेरी गोद में / बह रही नदी हो।

केदार की कविताओं की यह नदी अपने साथ जाने कितना कुछ बहाती लाई है—युगों का हाहाकार भी, आह्लाद भी, उल्लास भी। इस नदी के घाट चौड़े और खुले हैं और मुक्त आसमान के नीलेपन से आंख मिला रहे प्रतीत होते हैं। ओछे वाद-विवादों की जकड़बंदियों से परे केदार की कविता की यह नदी एक गहरी मानवीय गूंज के साथ हमें बुला रही है। कोई भी सृजनधर्मी संवेदनशील मनुष्य भला इस पुकार को अनसुना कैसे कर सकता है? ... यों भी यह एक तथ्य है कि केदार

की कविता निरी तात्कालिकता की सीमाओं को उलांघकर वहां आ गई है जहां उसमें कुछ न कुछ 'कालातीत' प्रभाव का होना साबित होता है। अगर कोई काव्य समय के इतने लंबे, बीहड़ दबावों को झेलता, खाइयों-दरों को पार करता हुआ आज भी हमें बिल्कुल अपना-अपना-सा लगे और उसकी गूंजें-अनुगूंजें हमारी जीवन-लय के साथ गुंथ गई हों, तो वह 'युग काव्य' के दर्जे को तो खुद ही पा लेता है। और केदार जी की कविताएं हमारे युग का काव्य इसलिए भी हैं क्योंकि हर दफा शंका और संशयों के कुहासे के बीच वे हमें खूब मजबूती और पूरे होसले से जीवन जीने के लिए ललकारती हैं। यहीं केदार की कविता के पुनर्मूल्यांकन में आने वाली सबसे बड़ी उलझन भी हमारे रास्ते में आ खड़ी होती है। इसलिए कि केदार की प्रगतिवाद की अवधारणा को 'छायावाद की प्रतिक्रिया' वाली पिटी-पिटाई लीक पर शायद ठीक-ठीक व्याख्यायित नहीं किया जा सकता। केदार भी दरअसल निराला की परंपरा को ज्यादा वास्तविक धरातल पर लाने, उसे पुख्ता आधार और व्यापकता देने वाले कवियों में हैं। इसलिए उनकी परंपरा 'नई कविता' और यहां तक कि समकालीन कविता के मौजूदा परिदृश्य में भी किसी न किसी रूप में झलक जाती है। □

धूप धरा पर उतरी

अजय तिवारी

अप्रैल फूल का दिन औरों के लिए जो भी हो, 1911 में इसी दिन केदारनाथ अग्रवाल का जन्म हुआ था। बुंदेलखंड की कनेर प्रकृति और उसमें भी सूदखोर आढ़तियों की नगरी बांदा। इस जिले का गांव है छयासिन—केदार की मातृभूमि। तब तक बच्चों की पढ़ाई अगर शुरू भी होती थी तो काफी देर से। लेकिन केदार कुछ जल्दी स्कूल भेजे गए। इसलिए उम्र बढ़ाकर लिखाई गई, 6 जुलाई, 1910। असली जन्मदेन का प्रताप ऐसा कि सबसे पहले उन्होंने अपने पुश्तैनी कारोबार को ही धता बता दी। परिवार में गल्ले और कपड़े का कारोबार और खुद का धंधा होता था। लेकिन कुशाग्रबुद्धि केदार कविता लिखने लगे। शुरू से ही उनके जीवन में जो तनाव पैदा हुआ होगा, उसे समझा जा सकता है। सरस्वती की उपासना में लक्ष्मी से जो मुंह मोड़ा तो जीवन भर सफलता और सार्थकता का फासला कायम रहा हालांकि यह उनका अपना चुनाव था और इसके लिए वह कठिन से कठिन समय में भी पछताए नहीं।

केदार के पिता हनुमान प्रसाद पुरानी रुचि के काव्य रसिक थे। कवियों का जमघट तो होता ही था, खुद भी 'मान' नाम से कविता लिखते थे। कह सकते हैं कि काव्य प्रेम उत्तराधिकार में मिला। लेकिन केदार उन लोगों में न थे जो आधुनिक या उत्तर आधुनिक शब्दावली अपनाकर रीतिवादी भावबोध अवतरित करते हैं। अपने बिल्कुल प्रारंभिक काव्य में जब केदार 'नींद के बादल' की दुनिया में थे, तब अलौकिक संस्कारों को चुनौती दे रहे थे—मैं नारी का प्रेमी, मेरी प्रीति अपायन। जिन्हें 'अपायन' में परकीया-सुख प्राप्त हो, वे ध्यान दें कि यह सब केदार ने अपनी विवाहिता पार्वती देवी के लिए लिखा है—गया ब्याह में युवती लाने, प्रेम ब्याह कर संग में लाया। यह ऐसा प्रेम था कि केदार पत्नी प्रेम के संसार में सबसे बड़े कवि बन गए और यह प्रेम पत्नी की बीमारी में कर्तव्य बनकर, मृत्यु के बाद चेतन स्मृति बनकर अब तक कायम है।

बांदा और रायबरेली में आरंभिक शिक्षा पूरी करके वह पहले इलाहाबाद पढ़ने गए, फिर कानपुर। इलाहाबाद में बच्चन, शमशेर, नरेंद्र

शर्मा, वीरेश्वर आदि से मित्रता हुई। ये कवि तब तक उत्तर-छायावादी भावबोध से आगे न बढ़े थे। रसाल जी की 'रसिक मंडली' में भी समस्या पूर्ति वाले संस्कार ही मिलते थे। इसलिए इलाहाबाद में उनका विकास ज्यादा नहीं हुआ। वास्तव में "कानपुर में ही हमारा नए ढंग का विकास हुआ।" गांव के किसानों के जीवन से परिचित थे ही, अपने घर का पकवान छोड़कर बतासिया अहीरन की बासी रोटी-मट्ठा सेवन कर चुके थे,



केदारनाथ अग्रवाल अपनी पत्नी स्व. पार्वती देवी के साथ

कानपुर में औद्योगिक मजदूर वर्ग से परिचय हुआ, बालकृष्ण बलदुआ के संपर्क से नए साहित्य और क्रांतिकारी विचारों का ज्ञान हुआ। उनके दृष्टिकोण में ऐसा परिवर्तन आया कि कानपुर की गंगा में उन्होंने 'देवताओं की आत्महत्या' देखी। श्रम की रचनात्मक और मुक्तिदायी भूमिका समझी तथा शोषण और जड़ता की वास्तविकता पहचानी। इससे उनके काव्य में सौंदर्य और सहानुभूति का जो उदात्त स्तर प्रकट हुआ, वह असाधारण है। श्रमिक के घर में पुत्रजन्म के उल्लास का यह दुर्लभ चित्र केदार ने ही अंकित किया है—*एक हथौड़े वाला घर में और हुआ। श्रम लाल कमल की तरह सुंदर और रचनात्मक शक्ति है, इसलिए जीने का धर्म—हाथ जो चट्टान को तोड़े नहीं, वह टूट जाए। यही श्रम शोषण की फौलादी मशीन से टकरा रहा है—हड़डी की लोहे से टक्कर।*

केदार आधुनिक हिंदी के अत्यंत महत्वपूर्ण कवि हैं। लेकिन दूसरे बड़े कवियों की तरह उनका जीवन घटनापूर्ण नहीं है। एक ही घटना मानी जा सकती है, जब वह कानपुर में अपने चाचा के साथ रहकर वकालत पढ़ते समय फेल हुए थे। घर पर 'बोझ' न बनें, इसलिए कालेज की निबंध-प्रतियोगिता में शामिल हुए, *माधुरी* में लेख लिखे और ट्यूशन की खोज में बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' से मिले। फेल होने का कारण शायद यह रहा कि चाचा वकील थे और कविता के घोर विरोधी, उनके डर से केदार दिन में कविता लिख ही न पाते थे। रात के अंधेरे में वह कविता लिखते थे और 'धूप की तलवार' लेकर अपना और दुनिया का अंधेरा काटते थे। इसलिए घटना बहुल न होने पर भी उनका जीवन तनाव-बहुल और प्रतिरोधपूर्ण अवश्य था। इसी संघर्ष में उनके प्रगाढ़ रागात्मक संस्कार निर्मित और विकसित हुए। इसीलिए उनकी सादगी के भीतर बड़ी दृढ़ता, आत्मीयता और मर्म छिपा हुआ है।

इलाहाबाद में अपने एक चाचा बटुकनाथ के यहां केदार ने एक बार चंद्रशेखर आजाद को देखा था—उनकी मृत्यु से एक दिन पहले। रामकुमार वर्मा के यहां एक बार सरोजनी नायडू और एक बार मदमोहन मालवीय से मिले थे। कविता भी सुनानी पड़ी थी। ऐसी भेंट-मुलाकातों और मद्रास या पुराने सोवियत संघ आदि की यात्राओं को छोड़कर उनका जीवन लगभग घटनाहीन रहा है। जिस यात्रा का उनके जीवन और साहित्य पर सबसे दूरगामी प्रभाव पड़ा, वह थी 1935 में साइकिल पर कानपुर से लखनऊ जाकर निराला से मिलना। यहीं राम विलासशर्मा से उनका परिचय हुआ और ऐसी मित्रता हुई कि आज 60 साल बाद और गहराई के साथ कायम है। केदार के चिंतन और सृजन से इस मित्रता का क्या संबंध है, यह दोनों के बीच 55 वर्ष का निरंतर पत्र-व्यवहार *मित्र संवाद* देखकर समझा जा सकता है।

निजी जीवन के अंतर्द्वंद्व और प्रगाढ़ रागात्मक संस्कार एक ओर सन' 30 के बाद राष्ट्रीय जीवन में आया क्रांतिकारी मोड़ और कानपुर के श्रमिक आंदोलन से जुड़े मार्क्सवादी विचार, दूसरी तरफ इनसे

मिलकर बना केदार का रचनात्मक व्यक्तित्व इतना मजबूत है कि वह चाटुकारिता और ठगी से कोसों दूर रहता है, नएपन की टोह में रोज बदलने वाले साहित्यिक फैशन और देश या दुनिया की राजनीतिक आंधियों में उनके विवेक को धूमिल नहीं होने देता; पत्नी, मित्र, विचारधारा, हर स्तर पर वह संबंधों और संकल्पों को प्राणपण से निभाते हैं। उनके लिए कविता, राजनीति और व्यक्तिगत संबंध की एक ही कसौटी है—ईमानदारी और जनता का हित। यह बात परिमल प्रकाशन के स्वामी शिव कुमार सहाय से उनके संबंधों में भी देखी जा सकती है जो 'एक हथौड़े वाला' कविता से केदार के प्रति आकृष्ट हुए और अब केदार साहित्य के एकमात्र प्रकाशक हैं। जब केदार को कवि मानने में भी लोगों को संकोच होता था, उस प्रयोगवादी युग में केदार-साहित्य से प्रेम गहरी निष्ठा की मांग करता था। अब जमाना थोड़ा बदला है।

पढ़ाई पूरी करने के बाद केदार ने महानगर का रुख नहीं किया। वापस बांदा लौटकर कचहरी में वकालत शुरू की। छोटी जगह, कवि स्वभाव, वामपंथी राजनीति, वकालत से नियमित आमदनी का सवाल न था। पत्नी का प्रेम और स्वास्थ्य के खयाल से रात में काम करने पर प्रतिबंध, काव्य-रचना के लिए अवकाश यत्नपूर्वक निकालना पड़ता था। एक ओर सबसे प्रगाढ़ लगाव, दूसरी ओर आर्थिक-रचनात्मक तनाव; केदार घर से दूर केन नदी के तट पर अकेले घंटों बिताते। यह उनके मनन का एकांत होता। साहित्य और जीवन की बहुत-सी उलझनें वह यहीं सुलझाते। विश्व ज्ञान और केन का साथ, उनके आंतरिक संसार की जीवन और प्रकृति के मर्म में बहुत गहराई तक बैठने में सहयोग देते रहे हैं। इसीलिए केदार 'अनहारी हरियाली' के कवि बने हुए हैं। उन्हें न 'मान-पान' से मारा जा सकता है, न लालच-भय से डिगाया जा सकता है। इसीलिए 1990 के बाद की बदली हुई दुनिया में भी वह 'पुष्पदीप' खिलाए अपने संकल्प और विश्वास के साथ अडिग खड़े हैं। अपनी जनता से उनका प्रेम इतना सजीव है कि बांदा के लोग उन्हें 'बाबूजी' कहते हैं। इस जनता से वह ऐसी शक्ति पाते हैं, जो काव्य रचना में परिवर्तित होकर उन्हें जीवित रखती है:

*मुझे प्राप्त है जनता का बल/वह मेरी कविता का बल है।
मैं उस बल से / शक्ति प्रबल से / एक नहीं सौ साल जिऊंगा।*

बालभारती

बच्चों का लोकप्रिय हिंदी मासिक। सचित्र कहानियों, ज्ञानवर्धक लेखों और कविताओं से भरपूर।

एक प्रति	3.00
वार्षिक	30.00
द्विवार्षिक	54.00
त्रिवार्षिक	72.00

“टूटेपन को कविता की ममता से जोड़ा...”

85वें जन्म दिवस के अवसर पर केदारनाथ अग्रवाल से सुधीर कुमार सिंह की आजकल के लिए विशेष बातचीत

बस या ट्रेन से बांदा उतरने पर आपको केदारनाथ अग्रवाल का घर ढूँढने के लिए परेशान नहीं होना पड़ेगा। कोई भी रिक्शे-तांगे वाला या ठेले-रेहड़ी वाला आपको ‘बाबूजी’ के घर का रास्ता बता देगा। लंबी-चौड़ी चार दीवारी के बड़े-से फाटक से अंदर घुसेंगे तो सामने सीमेंट के रंग की एक भव्य-सी इमारत दिखाई देगी; आप भ्रमित मत होइए—यह ‘बाबूजी’ के भतीजों की कोठी है। उसी के दाहिने एक कच्चे खपरैल के बरामदे से ही, या तो ऊनी कपड़ों के बीच से झांकते या हाथ के नाखूनों से पैर के नाखून कुतरते

आपको वह मिल जाएंगे। लेकिन सावधान! जाते ही इंटरव्यू की बात मत कीजिए और कविता की तो कतई नहीं। पहले यह बताइए कि इलाहाबाद में ठंड कैसी पड़ रही है। आप कुछ देर इधर-उधर की बात करके मुद्दे पर आना चाहें तो यही होगा कि साक्षात्कार में क्या रखा है, यह बताओ कि दूधनाथ जी के क्या हाल हैं? शिव कुमार सहाय से भेंट हुई कि नहीं? आप कितनी भी देर बैठें लेकिन चाय-नाश्ते का जुगाड़ ‘बाबूजी’ प्रायः नहीं कर पाते क्योंकि पूरे घर में कभी-कभी आने वाले रामस्वरूप के अलावा बाबूजी निपट अकेले हैं और सुबह-शाम का खाना भतीजे के यहां से थाली में लगकर आ जाता है। शाम होते ही बाबूजी के नियमित मुलाकातियों का आना-जाना शुरू हो जाता है। केशव तिवारी, नरेंद्र पुंडरीक के अलावा एहसान आवारा से लेकर स्थानीय डिग्री कालेज के अध्यापक राम प्यारे राय व एडवोकेट केदारनाथ अग्रवाल की कचहरी के वकील राम विशाल सिंह भी नियमित खोज-खबर लेते हैं और जब तक पड़ोसी मुनीम जी आकर सुर्ती मलकर न खिला जाएं, तब तक कोरम पूरा नहीं होता।



रेखांकन : उदयशंकर

आजकल के संपादक के आग्रह पर मैं दो बार केदार जी का साक्षात्कार ले चुका था लेकिन हर बार यह सोचकर मैं उसे छपने के लिए नहीं भेज पाया था कि अगली बार पूरी मेहनत और घरेबंदी करके बातचीत करूंगा और अधिक व्यवस्थित रूप से छपने के लिए भेजूंगा। लेकिन दिनांक 11.1.1995 को तीसरी बार केदार जी से बातचीत रिकार्ड करने के बाद मुझे लगा कि मैं प्रश्न-उत्तर के जिस व्यवस्थित तरीके से साक्षात्कार लेकर प्रकाशनार्थ देना चाहता हूं, वह केदार जी के साथ संभव नहीं है। जैसे कि आप पूछ कुछ रहे हैं, और

बांदा के ‘बाबूजी’ बड़े भोलेपन और सरलता से आपको कुछ और ही समझा रहे हैं, और इस दौरान कभी-कभी यह भी लगता है कि वह बड़ी सजगता से कन्नी काटकर गोल-मोल किए जा रहे हैं। मुझे कभी-कभी झल्लाहट और खिन्न भी होती है और मैं उन्हें समझाने की कोशिश भी करता हूं। बहरहाल बड़ी मशक्कत से और लड़-झगड़कर मैं दो-तीन दौर में रिकार्ड की गई इस बातचीत में से कुछ सवाल-जवाब बना पाया हूं:

प्रश्न : हिंदी में लघु पत्रिका आंदोलन की भूमिका पर आप क्या सोचते हैं?

उत्तर : देखो, लघु पत्रिकाएं कभी आंदोलन का रूप नहीं ले पाईं, लोगों ने बड़ी-बड़ी बातें कहकर लघु पत्रिकाएं शुरू कीं लेकिन वहां भी जल्दी ही गुटबाजी शुरू हो गई और अपनी-अपनी मंडली लेकर लोग बैठ गए। किया-धरा कुछ नहीं, बस दुनिया भर का हल्ला मचाया और जहां पहुंचना था वहां पहुंचे ही नहीं। न जीवन दृष्टि विकसित हो पाई और न साहित्य का ही कुछ भला हुआ।

क्या एक भी पत्रिका अपनी भूमिका निर्वाह नहीं कर पा रही है?

इधर तो बहुत पत्रिकाएं आती नहीं लेकिन *साम्य*, *वसुधा* और एक-दो पत्रिकाएं हैं जो अच्छी लग रही हैं।

बाबूजी, पिछले दिनों विभिन्न लेखक संगठनों ने अपने सम्मेलन किए, काफी चर्चा हुई....

(*बात को बीच में ही काटकर*) अरे, सुना है कि त्रिलोचन वो नक्सलाइटों वाले संगठन में चला गया। पता है तुमको? (ठहाका) लेकिन देखो यार, इस सबसे कुछ नहीं होता क्योंकि यहां सब जगह राजनीति पर राजनीति है, और लिखना-पढ़ना बंद है। आप ऐतिहासिक द्वांत्मक भौतिकवाद को जान लीजिए और अपनी जीवन दृष्टि विकसित कीजिए, दुनियादारी के चक्कर में मत पड़िए।

लेकिन बाबूजी! आपको भी तो प्रलेस के अध्यक्ष मंडल में रखा गया है जो पिछले महीने दिल्ली में सम्मेलन हुआ था?

हां, निमंत्रण आया था वहां से, लेकिन हम जाते नहीं। उन्होंने हमारा नाम रख दिया तो रख दो भाई, इससे क्या होता है, हम तो कभी इस फेर में पड़ते नहीं। जिसको जहां रखना है रखता रहे, हम कहीं नहीं जाते।

बाबूजी, यह तो आप अब ऐसा कह रहे हैं। एक जमाने में तो आपने प्रगतिशील आंदोलन की गतिविधियों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी; जब 1973 में आपके संयोजन में बांदा में 'लेखक सम्मेलन' हुआ था और उसमें बड़ी संख्या में लेखक जुटे थे।

हां, उस जमाने में उसकी जरूरत थी।

बाबूजी, अब जबकि आपके तमाम कवि मित्र और साथी बिछुड़ रहे हैं और सन 1986 में माताजी (उनकी धर्मपत्नी) के न रहने के बाद इस एकाकीपन में कैसी कट रही है?

हमने तो वह कविता भी लिखी है कि—*दुख ने हमको जब-जब तोड़ा/हमने अपने टूटेपन को/कविता की ममता से जोड़ा/जहां गिरा मैं कविताओं ने मुझे उठाया.....*, तो यह कविता और हमारा जीवन दर्शन हमको साथे है और हम शरीर को साथे हैं। लोग चले जा रहे हैं, नरेंद्र चले गए, शमशेर गए, शील हमसे उम्र में बहुत छोटे थे—चले गए। दुख तो होता है लेकिन हम दुख को बांधे थोड़े रखते हैं। हमारी पत्नी नहीं रही, हमने उसको अपनी कविता में जिंदा रखा है और वह है हमारे साथ।

बाबूजी, आप आजकल हिंदी-साहित्य के केंद्र में किस विधा को देख रहे हैं?

देखो सुधीर, तुम केवल यह जान लो कि ऐतिहासिक द्वांत्मक

भौतिकवाद से छुनकर जो साहित्य और जीवन दृष्टि आती है वही केंद्र में रहती है, और रहेगी।

अभी पिछले साल आपके व रामविलास जी के पत्रों का बहुत रोचक संग्रह छपा है, वह कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। लेकिन उसको पढ़ते हुए बराबर यह लगता है कि आप लोग घर-बार, पढ़ाई-लिखाई और साहित्य-आलोचना के अलावा विचारधारा के स्तर पर भी सैद्धांतिक बहसों पत्रों में करते हैं। लेकिन उस दौरान देश में घटित हो रही महत्वपूर्ण, राजनीतिक घटनाओं पर या स्वतंत्रता-आंदोलन आदि पर कोई चर्चा नहीं करते।

तुमने तो इस पर हमको पत्र भी लिखा था और शायद हमने जवाब भी दिया था। दरअसल, हम लोगों के पत्रों में बहुत व्यक्तिगत बातें होती थीं और तब यह पता भी नहीं था कि यह छपेगा भी। नहीं तो ऐसा नहीं था कि घटनाएं सामने आती रही होंगी और हम लोग सोचते न रहे हों। हमारी मानसिकता में ये सब चीजें जरूर आई होंगी।

बाबूजी, तारसप्तक के प्रकाशन के दौरान आपके करीब सभी साथी—मुक्तिबोध, शमशेर, रामविलास आदि उसमें शामिल हुए थे, आपके शामिल न होने का क्या कारण था?

कविताएं मंगाई थीं हमसे अज्ञेय जी ने। हमने भेजी भी थीं लेकिन उनका आग्रह प्रयोग पर अधिक था और हमारी एक कविता थी—'अभियुक्त 110 का', उसे उन्होंने लिखा कि इसे हटा लीजिए। लेकिन हमको वह कविता बहुत पसंद थी, सो हमने कहा कि यह तो जरूर छपे। नहीं तो चाहे आप हमें न ही छापें, तो उन्होंने नहीं छपा।

बाबूजी, आज आपको कविता के क्षेत्र में नए लोगों में क्या संभावनाएं नजर आती हैं।

एक तो यहां छोटी-सी जगह में बहुत पत्र-पत्रिकाएं नहीं आतीं, पहले लोग भेजते थे अब नहीं भेजते। कुछ लोग भेजते हैं, तो मैं जितना देख पाता हूं उसमें मुझे लगता है कि बहुत 'क्रिएटिव' स्थिति नहीं है, दृष्टि का अभाव है, वह नहीं होना चाहिए। उसे चिंतन में आना चाहिए तब लिखना चाहिए। बहुत संतोषजनक स्थिति तो नहीं है लेकिन फिर भी बहुत लोग लिख रहे हैं, मेहनत कर रहे हैं, आगे चलकर और अच्छा लिखेंगे।

कुछ लोगों के नाम याद आ रहे हैं?

नाम याद नहीं रहते।

नए लोगों के लिए कुछ कहना चाहेंगे?

लोग खूब पढ़ें, समझें, ऐतिहासिक द्वांत्मक भौतिकवाद को समझकर अपनी जीवन दृष्टि विकसित करें, तब लिखें और तभी उसकी उम्र लंबी होगी। □

“हैलो ...!”

“सिक्स फोर थ्री ... वन फोर ... सिक्स जीरो?”

उधर से एक बड़ी हल्की-सी नई आवाज—“यस!”

“कुड आई टाक टू मिस आराधना पुरी?”

“स्पीकिंग।”

“जी, जी, मिस पुरी, मेरा नाम अविनाश है। अविनाश सक्सेना।”

“कहिए मिस्टर सक्सेना? क्या बात है?”

“सॉरी फॉर बोदरिंग यू मिस पुरी, आपने शायद नोट किया होगा कि ‘मधुमती’ के इस जनवरी-मार्च के अंक में मेरी और आपकी कहानी एक साथ छपी है।”

“ओह, तो आप ही हैं वह अविनाश सक्सेना, जिनकी ‘आराधना’ मेरी ‘व्यथा’ के साथ छपी है।”

“जी, मैं ही वह सक्सेना हूँ।

“पर मैंने अभी पढ़ी नहीं है।”

“जी, मेरा यह मतलब नहीं था ... मिस पुरी, अगर आप बुरा न मानें और इजाजत दें तो आपसे एक बार मिलना चाहता हूँ।”

आवाज इतनी मिन्नत भरी थी जैसे भीख मांग रहा हो। मिलने में क्या नुकसान है? अपनी लेखक बिरादरी का है। कहानीकार है। युवा प्रतिभाशाली और नया है। कहीं किसी गोष्ठी की भीड़भाड़ में मिलने से तो अच्छा है घर पर ही मिला जाए। गोष्ठियों में तो हर नए मिलने वाले लेखक में एक ऊपरीपन, सतहीपन, ढोंगीपन और अक्सर चापलूसी भरी होती है: ‘बस आपके सान्निध्य की कामना थी।’ ‘बस आपसे मिलने को आतुर था।’

दूसरी ज़िंदगी

योगेश भटनागर



रेखांकन : राजेंद्र गायकवाड़

‘कितनी अच्छी कहानी लिखती हैं।’ ‘क्या शिल्प है?’ ‘आपसे बहुत कुछ सीखना है’—वगैरह-वगैरह। ऐसे ही बेमानी शब्दों के प्रयोग मुझे खुश करने के लिए कहने वालों से तो यह कहीं अच्छा है। फिर जो भी कहेगा, घर की चारदीवारी में कहेगा। चापलूसी या ढोंग चाहकर भी नहीं कर पाएगा। कोई होगा जो नहीं उसके इस व्यवहार को देखने के लिए। यही सब सोच रही थी मैं, इतने में ही उधर से फिर आवाज आई।

‘हैलो, मिस पुरी आप खामोश क्यों हो गई। इफ आई हैव हर्ट यू आइ एम सॉरी। लेकिन मैं सिर्फ आपसे एक बार मिलना चाहता हूँ। बिलीव मी, सिर्फ एक बार ही मिलना चाहता हूँ। उसके बाद आपको दोबारा तकलीफ नहीं दूंगा।’

... कुछ समझ में नहीं आ रहा था। क्या नुक्सान है मिलने में! कोई खा तो नहीं जाएगा मुझ अघेड़ा को। और फिर युवा प्रतिभाशाली कहानीकार तो किसी अपनी हमउम्र को तलाशेंगे और वो भी फोन पर नहीं। दिल्ली की किसी खचाखच भरी साहित्यिक गोष्ठियों में। फिर वही आवाज ...

‘हैलो, मिस पुरी। कुड आई मीट यू ओनली वन्स?’ उसकी आवाज से लगता था कि वह वाकई अनुरोध कर रहा था और मिलने को बेचैन है।

‘कब आना चाहते हैं?’

‘जब कहें। जिस वक्त कहें। आपके अपने समय के अनुसार।’

‘ठीक है, आप अगले सोमवार को चार बजे घर आ जाइए। यहीं बैठकर बातें होंगी।’

‘जी, शुक्रिया। मैं ठीक चार बजे आ जाऊंगा।’

‘थैंक यू।’

अविनाश सक्सेना? ये हैं कौन? इधर कभी इन कहानीकार का नाम सुनने में नहीं आया कहीं भी? किसी प्रतिष्ठित पत्रिका में कभी छपा हो, ऐसा भी याद नहीं पड़ता? दिल्ली में शायद नया आया है। किसी मठ में घुसा

नहीं है मेरी तरह। इसके बावजूद ‘मधुमती’ में छपने का मतलब, कहानी तो अच्छी ही लिखता होगा। ‘मधुमती’ के संपादक रजनीश ‘केवल’ किसी किस्म का पक्षपात नहीं करते। सब जानते हैं कि एक वही हैं जो नए-नए कहानीकारों को अपनी ‘मधुमती’ में जगह देते हैं। रचना अगर पसंद आ जाए, उसमें कहीं कोई फिलासफी हो, कहीं कोई वेदना या अनुभूति या कोई जिद या कुछ भी नया हो तो अपने सारे संपादकीय गुणों का पूरी तरह प्रयोग करके रचना को प्रकाशय बनाकर छाप देते हैं। इस तरह से वह नए कहानीकार को कथा-शिल्प ही नहीं, कहानी कहने के ढंग से भी परिचित कराते हैं। सच्चे और निःस्वार्थ गुरु हैं। शिष्य को न जानते हुए भी गुरुकर्म करते हैं। अविनाश सक्सेना एक ऐसे ही शिष्य हैं जिनमें केवलजी ने एक बड़ा पोटेंशियल देखा है। उन्होंने मेरी पहली कहानी के साथ भी यही किया था। मुझे प्रकाशय बना दिया था।

यही सब सोच रही थी मैं कि अचानक दिल में आया, क्यों न ‘आराधना’ को पढ़ा जाए ...! क्या कहानी है! उत्तम! अति उत्तम! युवा अनंत के पहले प्यार की कहानी थी। कैसे अनंत का प्रेम बिछुड़ गया था? उसकी तीस साल की तलाश आराधना को नहीं खोज पाई थी। अनंत पता ही नहीं लगा पाया कि वह है कहां? ऐसा कभी हो सकता है क्या? एक शहर में रहते हों और एक दूसरे का पता भी न जानें! यूँ तो बहुत-से प्रेमी शादी नहीं कर पाते। बिछुड़ते हुए तरह-तरह की बातें कहते हैं। कोई कहती है—‘मेरे मां बाप तैयार नहीं है। मुझे माफ कर दो ...।’ कोई कहता है—‘मैं अपने मां-बाप का इकलौता बेटा हूँ। अगर मैंने अपनी मर्जी से शादी की तो मेरी मां को हार्ट अटैक हो जाएगा। मैं मां को दुख नहीं दे सकता।’ ‘मेरा भाई मेरी शादी के खिलाफ है।’—वगैरह वगैरह। इसी तरह के बेवकूफाना शब्दों के प्रयोग के बाद अपनी-अपनी कायरता, अपना-अपना भीरुपन, अपने-अपने अपने आप न लेने की ताकत न रखने वाले, कभी समाज को, कभी परिवार को, कभी परिवेश को, कभी संस्कारों को दोषी ठहराते

हुए दो प्रेम करने वाले नौजवान अलग हो जाया करते हैं और फिर कभी एक-दूसरे को ढूँढ़ने की कोशिश तो दूर, कभी एक-दूसरे को याद भी नहीं करते। हां, नफरत करने के लिए हजार आधार जरूर ढूँढ़ लेते हैं। इसके बावजूद एक दूसरे का पता तो जानते हैं। ऐसा ही कुछ उस दिन अनंत, मेरे अनंत सक्सेना ने कहा था—‘आराधना मेरे मां-बाप मेरी शादी तय करना चाहते हैं। मेरे बाप पेरिलेटिक हैं और बी.पी. के मरीज। ज्यादा दिन नहीं जी पाएंगे।’

‘क्या? यह सब इतने दिन क्या चल रहा था हमारे बीच? क्या यह नहीं हो सकता कि उनके बाद ... शादी करें।’

‘नहीं, मेरे पिता चाहते हैं कि उनके जीते-जी मैं शादी कर लूं।’

‘तो मुझसे क्यों नहीं कर लेते?’

‘विरादरी के अंदर करना चाहते हैं।’

‘पांच साल से क्या मेरे साथ नाटक कर रहे थे। चांद-तारों की बातें करते थे। हजारों सपने हमने देखे थे साथ-साथ। क्या कुछ करने को तैयार नहीं थे तुम, अनंत! तब क्या भूल गए थे अपने बाप और विरादरी को।’ मैंने गुस्से में और बहुत कुछ कह डाला था। अनंत चुप रहा था तब। थोड़ी ही देर में उठकर चला गया था। उस वक्त मैं—आराधना—पूरी बाईस वर्ष की नवयौवना, सामने खाली पड़ी कुर्सी को काफी हाउस के शोर में ऐसे देख रही थी जैसे कोई माइलस्टोन हो। और वैसा ही हुआ। आगे आने वाला सारा रास्ता मैंने अकेले ही तय किया! पिछले तीस साल! जब भी कोई कहानी छपती तो सोचती कि अनंत पढ़ेगा तो कम से कम चिट्ठी तो लिखेगा। पर ऐसा कुछ नहीं हुआ। न वह आया और न ही उसकी चिट्ठी। ‘फिर वही तलाश’ के बाद कहानी और कहानी लिखती गई और इस ‘ब्यथा’ ने आज ‘आराधना’ से मिलवा दिया ...।

पूरा हफ्ता इसी उधेड़बुन में गुजरा। क्यों मिलना चाहते हैं यह अविनाश सक्सेना? मेरे अलावा रश्मि रावत की भी तो कहानी छपी

है उसी अंक में! मेरी 'व्यथा' से अच्छी है। कहीं इनको मेरा नाम तो पसंद नहीं आ गया? कोई नाटक तो नहीं कर रहे? कहीं प्रेमार्पण तो नहीं करने आ रहे? कुछ लेखक ऐसे भी ढूंढते हैं अपनी अर्धांगिनी को। बाद में कहने को होती है अर्धांगिनी और लिखने को लिख मारते हैं हजारों पृष्ठ नारी मुक्ति पर। पर अर्धांगिनी ने जरा कहीं चीं-चपड़ की तो उसे अग्नि को समर्पित कर देते हैं। उसी अर्धांगिनी को मारते-पीटते हैं, नशे में तरह-तरह से सताते हैं। यहां तक कि उसका लेखन तक बंद करवा देते हैं। पुरुषत्व की एक यही तो विजय मानते हैं—इनवैलिड कर दो नारी को। घर के बाहर नारी मुक्ति के नेता और अंदर 'नारी पशु-समान' के प्रणेता। ऐसे भी होते हैं जो बाल-विवाह के विरुद्ध और विधवा-विवाह के समर्थक होते हैं। लिखते हैं कि पति-पत्नी की आयु बराबर की होनी चाहिए और स्वयं अपनी बेटी बराबर लड़की से शादी कर लेते हैं। आखिर लेखक भी तो कलाकार होता है! सुंदरता का उपासक होता है! फिर ऐसे विवाह यौन-संबंधों या नारी को मातृत्व देने के लिए नहीं वरन केवल बौद्धिक एकात्मकता के लिए होते हैं! पर यह हमारे अविनाश सक्सेना? मुझे अंधेड़ा से कौन-से संबंध स्थापित करना चाहेंगे? वैसे आराधना, अंधेड़ा लगती नहीं हो! कौन-सी नारी चाहती है कोई उसकी सच्ची आयु जाने। खुद भी नहीं याद रखना चाहती अपनी उम्र। हमेशा यही सोचना चाहती है कि वह वैसी ही षोडशी नवयौवना है। गलत भी क्या है?

यही सब सोचते-सोचते सोमवार भी आ गया। आज सुबह से ही बेचैनी हो रही थी। मैंने फिर 'आराधना' को पढ़ा। आज ऐसा लगा जैसे यह अनंत की कहानी है। पर इस युवा कहानीकार अविनाश सक्सेना की कल्पना की उड़ान इतनी ऊंची कैसे है? उसकी कल्पना मेरा यथार्थ है। मेरा कथ्य उसका शिल्प और फिर नाम भी मेरा। कहीं यह मुझे जानते तो नहीं? कैसे हो सकता है? पहली कहानी 'मधुमती' में छपी है। इससे पहले भी तो छपी होगी न? मैं क्या सब पढ़ती हूं।

'टिरिंग ... टिरिंग ...' अचानक फोन बज उठा। 'मधुमती' को उल्टा कर अपनी गोद में रख लिया। फोन उठाया।

"हेलो ... !" मैं हमेशा जरा 'लो' को लंबा करके बोला करती हूं। अनंत ने कहा था—इसमें बड़ा अपनापन है। फिर यह अनंत!

"सिक्स फोर थ्री ... वन फोर ... सिक्स जीरो!"

"हां, अविनाश जी, कहिए, मैं आराधना पुरी ही बोल रही हूं।"

"जी, नमस्कार। आप तो मेरी आवाज़ एक ही बार में पहचान गईं।"

मैं थोड़ा हंसी।

पता नहीं तुम किन में से एक हो। नारी मुक्ति की बात करने वालों में और नारी को दासी बनाने वालों में या फिर ऐसे साहित्यकार जो मानते हैं कि नारी ही नारी का चित्रण कर सकती है या फिर उन ढोंगी कला के उपासकों में से एक!

"जी कुछ खास नहीं। आपको केवल याद दिला रहा था कि मैं चार बजे आपके यहां हाजिर हो रहा हूं।"

"मुझे याद है।"

"जी, ठीक है, नमस्कार।"

"बाई।"

'हाजिर हो रहा हूं! 'नमस्कार!' यह जबान तो आज की पीढ़ी की नहीं हो सकती। आज के हिंदी युवा लेखक तो कहेंगे, 'आपके यहां चार बजे आ रहा हूं।' 'याद है न आपको।' वैसे तो आने से पहले कभी फोन नहीं करेंगे। फिर 'कुछ खास नहीं' यह भी आज की जवान नहीं है! कहते, 'कुछ विशेष नहीं'। फोन पर नंबर नहीं दोहराते हैं। कहते हैं, 'आराधना जी से बात हो सकती है।' कहीं यह अविनाश सक्सेना अंधेड़ा और सिखाऊ कहानीकार तो नहीं हैं? आराधना इनको छोड़ गई तो पहली और आखिरी कहानी लिख डाली। केवलजी ने प्रकाश्य बनाकर प्रकाशित कर दी। बाई चांस मेरा नाम भी आराधना है, मेरी भी कहानी

इसी अंक में छपी है। कहीं यह एमोशनलिज्म के विकिटम तो नहीं हैं? जाने क्या बात है? यही सोच रही थी कि घर की बेल बजी! उठते-उठते घड़ी देखी ठीक चार बजे थे। 'ए पंकचुअल पर्सन!'

मैंने दरवाजा खोला। देखा, सामने एक 50-55 साल का अंधेड़ा करीब साढ़े पांच फुटिया इंसान खड़ा है। गेहुआ रंग, गंजियाया हुआ सिर, चौड़ा माथा, बड़ी-बड़ी आंखें, लंबी नाक, पतले बारीक होठ, गोल चेहरा, खिचड़ी दाढ़ी से भरा हुआ। साफ-सुथरे कपड़े और पैरों में पालिश किए हुए काफी महंगे किस्म के जूते। एक ही क्षण में मैं यह सब देख गई।

"नमस्कार! मैं अविनाश सक्सेना।"

"आइए, अंदर आइए। आप तो बिल्कुल पंकचुअल हैं।"

"जी, जहां तक हो सकता है, हमेशा टाइम पर पहुंचने की कोशिश करता हूं। यह बात आराधना ही ने सिखाई थी।"—कहते-कहते सोफे पर बैठ गया।

मैं भी सामने बैठ गई। मैंने अपना पल्लू ठीक किया। मुझे लगा, वह मेरी तरफ देखे जा रहा है और मुस्कुरा रहा है। उसकी मुस्कुराहट मुझे धीरे-धीरे उसकी गिरफ्त में ले रही थी। क्या बला की मुस्कुराहट है।

"जी, कहिए सक्सेना साहेब।"

वह अचानक एकदम टैंस हो गया। उसके चेहरे पर बेचैनी फैल गई। पशोपेश में था, कहे कि न कहे। फिर हिम्मत जुटाकर पूछा—
"आपने 'आराधना' पढ़ी?"

कहना कुछ और चाह रहा है, कह कुछ और रहा है।

"जी पढ़ी। लगता है, आपका अनंत अपने पहले प्यार को अभी तक तीस साल से तलाश कर रहा है। यकीन नहीं आता, पांच साल तक प्रेम करने वाली एकदम यकायक मिलना बंद कर दे। फिर क्या ऐसा कोई सूत्र, उसका रिश्तेदार, उसकी दोस्त नहीं थी जो आराधना के बारे में बता सके। दोनों एक ही शहर में रहते हैं। सब मानते हैं कि पहले प्यार

को तो नारी हमेशा अपने सीने में छिपाए रखती है। कभी भूलती ही नहीं है। पर यहां तो अनंत एक नारी लग रहा है। मैं समझती हूं, आदमियों के जीवन में प्यार, मुहब्बत, प्रेम जैसी कोई अनुभूति होती ही नहीं। अनंत का यह अर्द्धनारीश्वर का रूप मुझे बहुत अच्छा लगा। इसी कारण आराधना मुझे बहुत पसंद आई” मैं कह तो गई सब कुछ। उधर सामने अविनाश के चेहरे पर बेचैनी ज्यादा दीखती थी।

“आराधना जी, सच तो यह है कि ‘आराधना’ मेरी अपनी आत्मकथा है। मेरी अपनी कहानी है। आप आराधना की हमनाम हैं। आपकी ‘व्यथा’ मैंने अपने आप को पाया इसलिए मिलने को उतावला था।”

मैं उसे देखती रह गई। क्या कोई आदमी इतनी बारीकी से साफ-साफ और सच्ची बात कह सकता है? वह भी यह जानते हुए कि एक नारी उसके प्रेम को जाने क्यों टुकड़ा कर चली गई थी। इसी क्यों को पूछने के लिए, जानने के लिए वह तीस साल से उसे ढूंढ रहा है।

“पर आपको मेरे से पहले कई और लड़कियां मिलीं होंगी जिनका नाम आराधना होगा। क्या उन सबसे परिचय किया था आपने?”

“... जी नहीं, उसके बाद सिर्फ आप ही मिली हैं। आप लेखक हैं, कहानीकार हैं इसलिए सोचा कि आप मेरी व्यथा को ठीक से समझ पाएंगी। आप अपनी राय भी दे पाएंगी। ... फिर थोड़ा रुका ... कहा —

“आप शायद यकीन नहीं करेंगी पर यह सच है आराधना जी, जब पहली बार फोन किया था तो मैं थोड़ी देर खामोश हो गया था।”

“क्यों?” मैं अपने पल्लू से उलझ रही थी।

फिर उसकी तरफ देखा, उसने अपनी नजरें नीचे झुका लीं और कहा, “आपकी आ ... वा ... ज आपके बात करने का ढंग, टोन सभी बिल्कुल आराधना से मिलती है।”

इससे पहले कि वह कुछ और कहता मैंने कहा, “ओह, आगे यह भी कहिए कि मेरी शक्ति, मेरी आंखें, मेरी नाक, मेरे होंठ सभी कुछ आपकी आराधना से मिलते हैं। थोड़ी देर



“खैर, आप मुझसे मिलना चाहते थे, मिल लिये। मेरी प्रतिक्रिया जानना चाहते थे ‘आराधना’ के बारे में, सो जान लीं! मैं आपकी आराधना की हमनाम ही नहीं! हमआवाज भी निकली! अच्छा तो यही होगा कि यह मुलाकात यहीं खत्म कर दें।”

वह खामोश आंखें झुकाए बैठा रहा।

हम दोनों के बीच एक बहुत टेंस खामोशी पसरती जा रही थी। मैं सोच रही थी, अगर मैं इसकी आराधना की हमआवाज हूं तब तो यह मेरे पीछे ही पड़ जाएगा। वैसे बातचीत से तो ईमानदार लगता है। अच्छा दोस्त तो हो ही सकता है। सिनसियर भी है! तभी तो तीस साल से अपनी आराधना को तलाश कर रहा है। शायद शादी भी नहीं की। मेरी ही तरह। पर मैं तो अनंत को नहीं तलाश रही। अब इससे इतनी तेजी से नहीं बोलूंगी। व्हाई टू हार्ट हिम।

खामोशी बर्दाश्त के बाहर होती जा रही थी। आखिर घर तो मेरा ही है। अगर मैं ही खामोश हो गई तो मेहमान क्या सोचेगा? मैंने सिर उठाकर देखा वह मेरे हाथों को साड़ी के पल्लू से उलझते हुए देख रहा था। फिर उसने

मैं आप कहेंगे—काफी हाउस चलेंगी मेरे साथ? क्यों आप सभी मर्द एक-से होते हैं?”

फिर मैंने नोट किया कि अविनाश अपने आप को काफी अनकफर्टेबल महसूस कर रहा था। कहीं अपने आप को अपराधी भी महसूस कर रहा था। उसे मेरे ये रिमार्क्स अच्छे नहीं लगे थे। मुझे भी गुस्सा आ गया था। क्या समझता है यह अपने आप को! फिर उसने हिम्मत जुटाकर कहा : “आप बुरा न मानें यह सच है। हमशक्ल तो कई मिल जाते हैं पर हमआवाज मुश्किल से मिलते हैं। और फिर अब पचपन साल की उम्र में मुझे झूठी बात कहने की क्या जरूरत है। सच सुनने और कहने की ताकत है मुझमें, आराधना जी!”

मेरी तरफ देखा। उसकी आंखों में एक प्रार्थना-सी झलक रही थी। जैसे कोई अनुरोध करना चाह रहा था। कमरे में सिर्फ पंखे के चलने की आवाज के सिवा कोई दूसरी आवाज नहीं थी।

“आपने मेरी ‘व्यथा’ पढ़ी?” खामोशी तोड़ते हुए और बात को बदलते हुए मैंने कहा।

“... मैं आराधना से अभी भी वैसा ही प्यार करता हूँ। आपकी पूजा कभी पीयूष को याद नहीं करती क्योंकि वह कायर था ज्यादातर मर्दों की तरह। आपकी पूजा जरा ज्यादा कंपलेक्स है। कहीं दिल की गहराई में पीयूष को छुपाए बैठी है पर मानने में अपनी हेठी समझती है।” मैं उसे देख रही थी। कितना ठीक समझता है यह इंसान!

इतना कह अविनाश चुप हो गया। मैं भी नजरें झुकाए बैठी रही जैसे कोई चोरी पकड़ी गई हो। फिर से गहरी खामोशी खाने को आ रही थी। यह जाता क्यों नहीं अब? हो तो गई मुलाकात! यह सोच ही रही थी कि अचानक अविनाश ने कहा—

“आराधना जी, मैं एक उपन्यास लिख रहा हूँ अपनी आराधना पर। क्या आप ... ?”

मैं चुप रही। उसे देख रही थी।

“क्या आप ... सिर्फ एक महीने मेरे साथ उन-उन जगहों पर चल सकती हैं जहां मैं और आराधना बरसों पहले पांच साल तक लगातार जाया करते थे। मैं अपने पहले प्यार को फिर से जीना चाहता हूँ, उसको पुनर्जीवित करना चाहता हूँ। आपकी आवाज यह करने में मेरी मदद कर सकती है। वायदा करता हूँ कि आपके करीब आने की कोशिश नहीं करूंगा। उतनी ही तटस्थता बरतूंगा जैसे एक ईमानदार लेखक अपने पात्रों के साथ बरतता है।” इतना कह चुप हो गया।

जब से आया है, हर बात चौंकाने वाली करता है। पहले हमनाम फिर हमआवाज बना दिया, अब आराधना का हमसाया बनने को कह रहा है। क्या हर्ज है? यह कहेंगे मैं सुनूंगी। मैं भी तो तटस्थ रह सकती हूँ।

“मैंने शायद आपको एक उलझन में डाल दिया है। पर वायदा ...।”

“मुझे कुछ वक्त दें सोचने के लिए। कुछ यू जस्ट फोन मी नेक्स्ट मंडे!”

“शयोर!” उसकी आंखों में एक विजय की चमक थी। शायद समझ गया था कि मैं तैयार हूँ।

“फिर मैं चलता हूँ। थैंक्स फॉर योर वार्म हास्पीटेलेटी।”

“बाई।”

मैं दरवाजा बंद कर फिर उसी सोफे पर बैठ गई। आज अचानक अनंत की याद फिर से ताजा हो आई। नफरत भरी आवाज में मैंने कहा—तुम कायर, भीरु और ढांगी ही रहे।

जैसे-जैसे मंडे करीब आता जा रहा था, एक ही ख्याल रह-रहकर आ रहा था, क्या हर्ज है आखिर लेखक-लेखक की ही तो मदद कर रहा है।

दोनों अपनी-अपनी जगह तटस्थ बने रहेंगे तो यथार्थ का चित्रण ज्यादा प्रामाणिक और औद्योगिक हो पाएगा। ज्यादा ऊंची-ऊंची और बड़ी-बड़ी बातों में अटकने की बजाए अविनाश को उसके प्यार को एक बार फिर जी लेने के कर्म को लेखक का धर्म मानकर मैंने उसके साथ जुड़ जाने का फैसला कर लिया।

जैसे ही मंडे को अविनाश का फोन आया, मैंने उसकी इस तीस बरस पुरानी आराधना बनने की स्वीकृति दे दी ...।

अगले दिन से ही हम दोनों की एक दूसरी जिंदगी शुरू हो गई।

अविनाश सबसे पहले मुझे ले गया चांदनी चौक के एक तंग और पुराने कटरे में। दोनों तरफ साड़ियों की दुकानें। उन पर सफेद कुर्ता पाजामा और टोपीधारी कोई अग्रवाल, जैन या मुल्लानी आलती-पालती मारकर बैठे थे। आज भी नहीं बदले। दोनों तरफ से दुकानदारों के दलाल हमें साड़ी खरीदने को बुला रहे थे

कोई-कोई तो साड़ी मुझ पर ऐसे डाल देता जैसे कि अभी लपेट देगा। ऐसे ही सबसे बचते-बचाते अविनाश एक हवेली के सामने जा खड़ा हुआ। एक बड़ा दरवाजा पुरानी लकड़ी का, पर बहुत मजबूत। हवेली की दहलीज से अंदर घुसा। एक बड़ा अहाता, सामने चारों तरफ दुमंजिले मकान। एक मकान की तरफ इशारा करके कहा—“वहीं आराधना रहती थी और मैं इधर सामने वाले मकान में। एक साथ बड़े हुए थे। वह तब बी. ए. फर्स्ट ईयर में थी, मैं एम.ए. में तभी हम दोनों को एक-दूसरे से कैसे प्यार हो गया था—यह तो याद नहीं रहा, इतना याद है कि हम दोनों एक-दूसरे को देखने और मिलने के लिए बेचैन रहते थे। छिप-छिपाकर ही मिलते थे हवेली के बाहर। मेरे से दो साल पीछे थी। हमारे कालेज का टाइम अलग-अलग था। वह सुबह जाती थी और मैं 10 बजे जाता था। मैं उसको जाता देखता था और वह मेरा कालेज से आने के वक्त इंतजार किया करती थी यहीं छज्जे पर खड़ी। मुलाकातें सिर्फ छुट्टी वाले दिन हुआ करती थीं। अक्सर मैं उसकी मोटी-मोटी आंखों और लंबे होठों और नशीली आवाज की तारीफ किया करता था। कहता था, बस मुझे आवाज मत देना! मेरी जान निकल जाएगी! वह हंसा करती थी। उसकी हंसी भी उन्मुक्त थी। अक्सर हाथ भी एक-दूसरे का पकड़ा करते थे।” मैं, चुपचाप सुन रही थी। उसकी आवाज कांप रही थी। कितना प्यार करता है यह आराधना को! पहले दिन बस इतना ही दिखाया।

अगले दिन लालाकिला के बस स्टैंड पर ले गया। बताया—यहीं वह उसका इंतजार किया करता था छुट्टी वाले दिन। यहीं से वे लोग टैक्सी लेकर अक्सर इंडिया गेट जाया करते थे और एक खास जामुन के पेड़ के नीचे बैठ घंटों बातें किया करते थे। फिर हम गए इंडिया गेट। उसी जामुन के पेड़ के नीचे जा बैठे। उसने बताया, यह सिलसिला चला करीब चार साल। इसी जामुन पेड़ के नीचे हम दोनों ने वायदा किया था, कमस खाई थी, एक-दूसरे से शादी करने की। “जानती हो, जब हम दोनों ने शादी करने की कसम खाई थी तो मैंने

उसका हाथ इतने जोर से दबाया था कि वह 'हाय' कहकर मुझसे लिपट गई थी और देर तक मेरे सीने पर सिर रखे खामोश बैठी रही थी, कहते-कहते अविनाश ने मेरा हाथ इतने जोर से दबाया कि मैं चिल्ला पड़ी "अविनाश, मार डालोगे क्या? क्या कर रहे हो? दर्द होता है।" अविनाश जैसे होश में आया तो "सारी, आराधना।"

ताज्जुब है, हम दोनों चार-पांच दिनों में आप से तुम पर आ गए थे। कैसे और कब, पता ही नहीं लगा। पर तुम कहना अच्छा लगता था मुझे।

"इंडिया गेट से उठकर कभी-कभी हम दोनों गेलार्ड रेस्तरां में जाया करते थे। आज वहीं चलेंगे।" मैं और अविनाश आज गेलार्ड में बैठे हैं। "पूरे तीस साल बाद आया हूं। सभी कुछ बदल गया है। अगर नहीं बदला है तो वही हमारे बैठने की जगह।"

अविनाश ऊपर बालकनी की तरफ जा रहा था। मैं भी उसके पीछे-पीछे। आखिरी मेज-कुर्सी पर जा बैठा। वह दीवार वाली कुर्सी पर मैं उसके सामने। ऐसे ही बैठा करते थे। कब अविनाश ने मेरा हाथ अपने हाथ में ले लिया, मेरी चूड़ियों की ऊपर-नीचे खनखनाने की आवाज में डूब गया, यह तब पता लगा जब वेटर ने आकर पानी के गिलास रखे। मैंने अपने हाथ उसके हाथों से खींच लिये। उसकी आंखों में ढेर सारा प्यार और साथ ही एक सवाल! क्या जाता है इसमें तुम्हारा? फिर कहा "जानती हो, कभी-कभी तो मैं तुम्हें अपनी आराधना ही समझने लगता हूं। तुम भी कभी कोई एतराज नहीं करतीं। कहीं तुम सचमुच में मेरी ही आराधना तो नहीं हो!"

"हमने तटस्थ बने रहने का वायदा किया है, अविनाश!" मैं हंस दी।

फिर अविनाश ने बताया, जब भी वे यहां आया करते थे तो सिर्फ चाय और चाकलेट पेस्ट्री का आर्डर करते थे क्योंकि सबसे सस्ती वही दो चीजें हुआ करती थीं। फिर कहा — "एक शाम हम दोनों यहीं ऐसे ही बैठे हुए थे। उस दिन आराधना ने हरे रंग की चूड़ियां पहनी

हुई थीं। मैं उनको खनखना रहा था। वह आवाज बहुत अच्छी लग रही थी। अचानक आराधना ने अपने दोनों हाथ मेरे कंधों पर रखे और जोर-जोर से खनखना दीं चूड़ियां — कहने लगीं तेरा नाम तो विनाश होना चाहिए था! जब देखो तेरा ही ख्याल आता है। कहीं की नहीं रही मैं। कितना इंतजार करना पड़ेगा?"

"नौकरी मिलने तक।"

"नहीं होता और इंतजार!" कहते कहते उसकी आंखें भर आई थीं। मैंने तब माहौल को हल्का करने की कोशिश की। मज़ाक में कहा—"तू क्या कम है! तू तो 'आरा' है। मुझे हर तरफ से काट-काट कर अपने में बसाए जा रही है। आरी होती तो ठीक रहता।"

तब उसने कहा था—"मैं तो 'धना' हूँ 'धना'। लक्ष्मी तेरी।"

"लक्ष्मी तो चपला होती है। किसी के साथ हमेशा नहीं रहती। मेरे लिए तो तू आरा ही ठीक है!"—कहते-कहते उसने ऐसे हाथ चूम लिये।

"अवि...ना...श! फिर वही हरकत।"

इस बार लगा कि उसकी आंखों में एक अजीब-सी लाचारी है, पागलपन है। "आराधना, सिर्फ कुछ दिन के लिए मेरी आराधना बन जाओ। तुम्हारे साथ हर गुजरा पल अच्छा लगता है। ज्यादा दिन की बात नहीं है। मेरी मुहब्बत का अखिरी मोड़ आने वाला है।"

मैं चुप हो गई। आंखली में सिर दिया तो मूसलों से डर क्या! और फिर लेखक का धर्म निभा रही हूँ! तटस्थ तो रहना ही है!

उस दिन से मैं उसकी आराधना का रोल करने लगी।

अगर वह कभी मेरी कमर में हाथ डालता या मेरा हाथ अपनी बगल में लेता, या कभी मुझसे लिपट जाता कुछ प्यारी-प्यारी बात करते-करते, या मेरे बालों में गजरा लगाता या कभी मेरे ऊपर इत्र छिड़कता, या कभी मेरी जांघों पर सिर रख लेट जाता या फिर अपना सिर मेरे सीने में छुपाकर रो लेता तो मैं कभी

एतराज नहीं करती थी। वह मुझे कहां-कहां नहीं ले गया—इंडिया गेट, महरीली, गेलार्ड, वेंगर्स, काफी काउस, बुद्धा जयंती पार्क, शंकर रोड जहां आराधना का कालेज था, ग्रीनपार्क जहां वह नौकरी करती थी, लाजपत नगर जहां उसकी बुआ रहती थी, फिर मायापुरी का वह मकान जिससे आराधना की शादी हुई थी।

फिर एक दिन वह मुझे आर्क्योलोजिकल सर्वे ले आया। लायब्रेरी में ले गया, वह सीट दिखाई जहां वह बैठकर पढ़ा करता था, लांस में वह पीले गुलमोहर का पेड़ जिसके नीचे बैठकर वे घंटों बातें किया करते थे और जरा सा अंधेरा बढ़ा कि एक-दूसरे के होठों पर होंठ रख दिया करते थे। मुझे लगा कि कहते-कहते वह मेरे होठों पर होंठ पर रख देगा। पर नहीं। वह संभल गया। यही सब बताते हुए वह मुझे बस स्टैंड पर ले आया। वह बैंच पर बैठ गया। मैं भी उसके पास बैठ गई। सामने इंडिया गेट के लांस। वहीं कहीं जामुन का पेड़ था। फिर उसने कहना शुरू किया—दो साल की तलाश के बाद भी कोई नौकरी नहीं मिली थी, उधर आराधना बेचैन हो रही थी, शादी के लिए। अगर थोड़ी और देर हो गई तो उसके मां-बाप कहीं और शादी कर देंगे। वैसे भी उनको हमारा प्यार अच्छा नहीं लगता।

"कल भी क्या? नौकरी भी तो नहीं है।"

"मेरी नौकरी तो है। इसी में गुजारा कर लेंगे।"

"पागल हो गई है। तू कमाए और मैं खाऊं।"

"नहीं, नौकरी खोज मेरी नौकरी के सहारे।"

"नहीं, यह नहीं को सकता।"

जैसे ही मैंने यह कहा कि आराधना गुस्से में बोली—"तो फिर कहीं और शादी कर ले और भूल जा मुझे।"

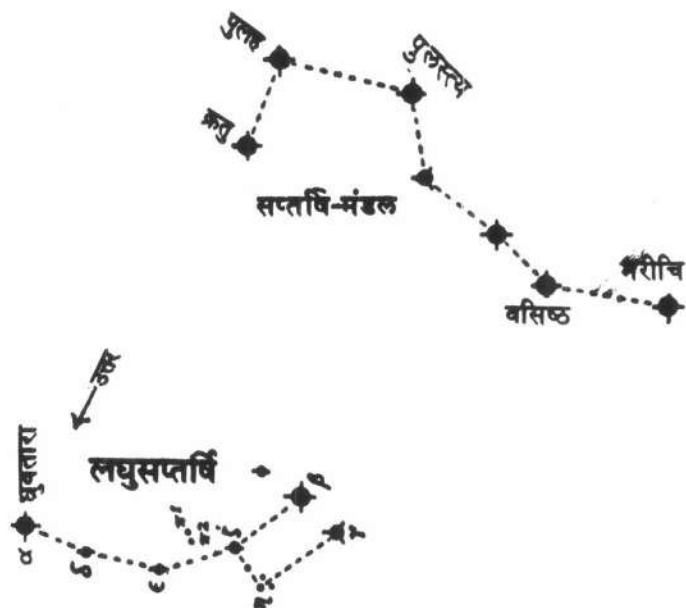
"क्या पागलों जैसी बातें कर रही है।"

पृष्ठ 63 पर जारी

अटल नहीं है

ध्रुवतारा

गुणाकर मुले



हमारा एक पुराना विवाह संस्कार है—ध्रुव-दर्शन। वर कुछ मंत्र पढ़ते हुए वधू को ध्रुवतारा दिखाता है। आशय यह होता है कि वधू पति के घर में ध्रुवतारे की भांति अचल रहकर सुख भोगेगी।

बालक ध्रुव की पौराणिक कथा से सभी परिचित हैं। ध्रुव की घोर तपस्या से प्रसन्न होकर विष्णु ने उसे आकाश में एक स्थिर तारे का स्थान प्रदान किया। ध्रुवतारे की स्थिरता को देखकर ही यह आख्यान गढ़ा गया होगा।

पृथ्वी अपनी धुरी पर पश्चिम से पूर्व की ओर चक्कर काटती रहती है, इसलिए आकाश के तारे हमें पूर्व से पश्चिम की ओर जाते दिखाई देते हैं। ऐसी स्थिति में पृथ्वी की धुरी की उत्तरी (दक्षिणी भी) दिशा में खगोल पर कोई तारा हो तो वह हमें स्थिर दिखाई देगा। धुरी की उत्तरी दिशा में आज ऐसा एक तारा है। इसे ही हम ध्रुवतारा कहते हैं। सप्तर्षि के तारे इसकी परिक्रमा करते दिखाई देते हैं। सप्तर्षि के सामने के दो तारों—क्रतु और पुलह—को जोड़नेवाली रेखा को क्रतु की ओर, यानी उत्तर की ओर, आगे बढ़ाया जाए, तो वह क्रतु से करीब 29 अंश की दूरी पर ध्रुवतारे से जाकर मिलती है।

ध्रुव को पहचानने का एक और तरीका है। जो स्थान जितने उत्तरी अक्षांश पर होगा, उतने अंश क्षितिज के ऊपर उत्तरी दिशा में आकाश की ओर देखा जाए तो ध्रुवतारा दिखाई देगा। जैसे, यदि आप 25 उत्तरी अक्षांश वाले किसी स्थान पर खड़े हैं, तो वहां से उत्तरी क्षितिज के 25 अंश ऊपर आकाश में ध्रुवतारा दिखाई देगा। प्राचीन काल में

नाविकों तथा यात्रियों को दिशा-ज्ञान कराने में ध्रुवतारे ने बड़े महत्व की भूमिका अदा की है।

भारतीय आख्यान में उत्तर ध्रुव का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण माना गया है। आधुनिक ध्रुवतारा जिस मंडल में है उसे पाश्चात्य ज्योतिष में उरसा माइनर अथवा लघु ऋक्ष (छोटी भालू, या लघुसप्तर्षि) कहते हैं। वस्तुतः इस तारा-मंडल का नियोजन यूनानी दार्शनिक थेलस ने 600 ई. पू. के आसपास किया था और इसे फोइनिस् नाम दिया था।

हमारे पुराणों में इस तारा-मंडल के लिए शिशुमार चक्र नाम भी देखने को मिलता है। जल में रहने वाले एक विशिष्ट जंतु को शिशुमार कहते हैं। उत्तरी भारत से शिशुमार चक्र को ध्रुवतारे का पूर्ण चक्कर लगाते हुए देखा जा सकता है।

ध्रुवतारा लघुसप्तर्षि मंडल या शिशुमार चक्र का प्रमुख (अल्फा) तारा है। द्वितीय कांतिमान का यह तारा हमसे 472 प्रकाश-वर्ष दूर है। ध्रुवतारा हमारे सूर्य से काफी बड़ा है। इसका व्यास हमारे सूर्य के व्यास से 120 गुना अधिक है। इसका सतह-तापमान भी ज्यादा है। मगर ध्रुवतारे के बारे में विशेष बात यह है कि चार दिन की कालावधि में इसका आयतन नियमित रूप से घटता-बढ़ता रहता है। साथ ही, इसका तापमान और इसकी कांति भी घटती-बढ़ती जाती है। तात्पर्य यह कि, आधुनिक खगोल-विज्ञान की शब्दावली में कहें तो ध्रुवतारा एक सेफाइड या सैफियरी अर्थात् स्पंदी तारा है। इस तारे के बारे में दूसरी महत्व की बात यह है कि यह हमारे सूर्य से करीब 10,000 गुना

अधिक प्रकाश और ताप उत्सर्जित करता है। ध्रुवतारा संभवतः एक युग्म-तारा है।

ध्रुवतारे को हमने स्थिरता का प्रतीक मान लिया है। शब्दकोशों के अनुसार भी ध्रुव के अर्थ हैं—स्थिर, अचल, अटल, नित्य, शाश्वत, एकरूप इत्यादि। मगर तथ्य यह है कि ध्रुवतारा ध्रुव नहीं है। पहली बात तो यही है कि आज का ध्रुवतारा खगोल के ठीक उत्तरी ध्रुव-बिंदु पर नहीं है। यह तारा वास्तविक ध्रुव-बिंदु से करीब एक अंश दूर है और चौबीस घंटों में एक छोटा-सा वृत्त बनाता है। वस्तुतः एक और तारा ध्रुव-बिंदु के अधिक नजदीक है, मगर वह 6.4 कातिमान का होने के कारण उसे कोरी आंखों से नहीं देखा जा सकता। वर्तमान ध्रुवतारा 2102 ई. में वास्तविक ध्रुव-बिंदु के सबसे नजदीक रहेगा। उसके बाद ध्रुव-बिंदु से इस तारे की दूरी बढ़ती जाएगी और भविष्य में कोई दूसरा ही तारा ध्रुवतारा कहलाएगा।

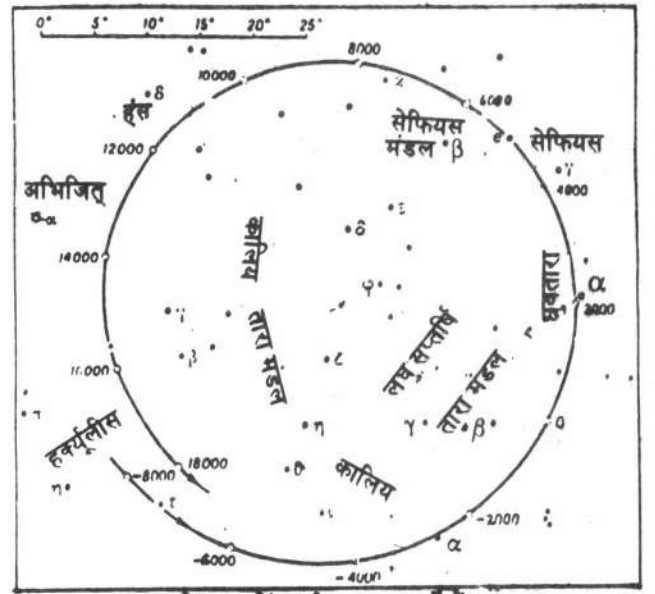
अतीत में भी यही स्थिति रही है। आज से दो हजार साल के पहले दूसरे ही तारे ध्रुवतारे माने जाते रहे हैं। पृथ्वी की एक विशिष्ट गति के कारण ही खगोल के ध्रुव-बिंदु की, और इसलिए ध्रुवतारे की, स्थिति बदलती रही है, बदलती रहेगी।

पृथ्वी पूर्णतः एक गोल पिंड नहीं है। यह दोनों ध्रुवों पर चपटी है और भूमध्य रेखा पर कुछ फूली हुई है। इसलिए पृथ्वी के अपने अक्ष-घूर्णन और सूर्य-चंद्र के गुरुत्वाकर्षण के कारण यह लट्टू की तरह डोलती भी रहती है। इस तरह पृथ्वी की धुरी का सिरा करीब 25,800 सालों में एक पूरा गोल चक्कर लगाता है। परिणामतः आकाश में ध्रुव-बिंदु का स्थान बदलता रहता है।

पिछले करीब दो हजार वर्षों से वर्तमान ध्रुवतारे (लघुसप्तर्षि के अल्फा तारे को) ध्रुवतारा माना जाता है, हालांकि ईसा की आरंभिक सदियों में वर्तमान ध्रुवतारा वास्तविक ध्रुव-बिंदु से काफी दूर रहा है। बुद्ध और महावीर के समय में ध्रुव-बिंदु के पास ऐसा कोई स्पष्ट तारा नहीं था जिसे ध्रुवतारा कहा जा सके। ईसा पूर्व चौथी सदी के यूनानी नाविक व खगोलविद पाइथियास ने लिखा भी है कि ध्रुव-बिंदु के पास कोई तारा नहीं है।

ईसा पूर्व 1000 के आसपास लघुसप्तर्षि मंडल का द्वितीय कातिमान का बीटा तारा ध्रुव-बिंदु के नजदीक था। उस समय कई देशों में इस बीटा-लघुसप्तर्षि को ही ध्रुवतारा माना जाता था। इसके लिए प्रमाण भी मौजूद हैं। प्राचीन यूनानी खगोलविदों ने इस बीटा तारे को पोलोस् (ध्रुव) कहा है। चीन के प्राचीन ग्रंथों में इस बीटा तारे को राज-नक्षत्र कहा गया है। प्राचीन अरबी में इस बीटा तारे के लिए कुतुब-अल्-शुमाली नाम मिलता है, जिसका अर्थ है—उत्तर का तारा।

आज से करीब 4,700 साल पहले (2,700 ई.पू. के आसपास, जब हड़प्पा संस्कृति अपने शैशव-काल में थी) कालिय (पाश्चात्य ड्रेको) मंडल का अल्फा तारा ध्रुव-बिंदु के एकदम नजदीक था। हड़प्पा संस्कृति



वास्तविक ध्रुव-बिंदु करीब 26,000 वर्षों में आकाश का एक पूरा गोल चक्कर लगाता है।

की उन्नतावस्था में भी यही अल्फा-कालिय ध्रुवतारा रहा होगा। अक्कद के शासक सारगोन-प्रथम के समय (लगभग 2,350 ई. पू.) यही तारा ध्रुवतारा था और कीलाक्षर अभिलेखों में इसे तीरू-आन्-ना (स्वर्ग का जीवन) कहा गया है।

आज से करीब 13,000 साल पहले वीणा (लायरा) मंडल का खूब चमकीला अभिजित् (वेगा) नक्षत्र ध्रुव-बिंदु के नजदीक था। इसी प्रकार, आज से करीब 13,000 साल बाद खगोल का ध्रुव-बिंदु, करीब 26,000 सालों का एक चक्कर पूर्ण करके, पुनः अभिजित् नक्षत्र के नजदीक पहुंच जाएगा।

सारांश यह कि, इस विश्व में ध्रुव, नित्य या शाश्वत कुछ भी नहीं है, ध्रुवतारा भी नहीं। आकाश का प्रत्येक तारा निरंतर अपनी स्थिति बदलता रहता है। पृथ्वी की धुरी, डोलते हुए, करीब 26,000 सालों में क्रांतिवृत्त के ध्रुव (कदंब) का एक चक्कर लगाती है, इसलिए आकाश का ध्रुव-बिंदु भी निरंतर अपना स्थान बदलता रहता है। इतना ही नहीं, पृथ्वी की धुरी की इसी विशिष्ट गति के कारण क्रांतिवृत्त पर संपात या विषुव बिंदुओं (जिन दो बिंदुओं पर क्रांतिवृत्त और खगोलीय विषुवत-वृत्त एक-दूसरे को काटते हैं) के स्थान भी पूर्व से पश्चिम की ओर सरकते रहते हैं और करीब 26,000 सालों में एक चक्र पूरा करते हैं। संपात या विषुव बिंदुओं के इस स्थित्यंतरण को विषुव-अयन अथवा अयन-चलन कहते हैं। खगोल-विज्ञान में अयन-चलन की जानकारी का बड़ा महत्व है। □

आकाश दर्शन से साभार। कृपया पुस्तक-वर्चा देखें।



किस्तोवस्की निर्देशित 'थ्री कलर्स रेड' (पोलैंड) का एक भावपूर्ण दृश्य।

दस चुनी हुई फिल्में

अंतर्राष्ट्रीय फिल्म समारोह पर दीवान सिंह बजेली

भारत के 26वें अंतर्राष्ट्रीय फिल्म समारोह, 95 की सबसे महत्वपूर्ण फिल्म क्रिजीस्टोफ किस्तोवस्की निर्देशित *थ्री कलर्स* रही, जो सिनेमाई कला का उत्कृष्ट नमूना है। फिल्म में निर्देशक, सिनेमाटोग्राफर और अभिनयकर्ताओं के सृजनात्मक मनोभावों को उद्घाटित किया गया है, जिन्हें पात्रों के मध्य न्यूनतम संवादों और दार्शनिक आधारों के रूप में दर्शाया गया है। कान फिल्म महोत्सव में जब इस त्रयी का अंतिम भाग *रेड* दिखाया गया तब पोलिश निर्देशक किस्तोवस्की ने जिसकी रचनात्मकता लगभग वैगनर-सी है, फिल्मी दुनिया से संन्यास लेने की घोषणा कर दी। यह विश्वास करना मुश्किल है कि अपनी सृजनात्मकता के शिखर पर पहुंचा 53 वर्षीय निर्देशक फिल्में बनाना ही छोड़ देगा।

समारोह को *थ्री कलर्स* (त्रयी) ब्ल्यू, व्हाइट और रेड के सभी प्रसंगों को प्रदर्शित करने का श्रेय प्राप्त है। निर्देशक ने 1789 की फ्रांसीसी

क्रांति और इसके तीन महान मानवीय आदर्शों—स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व से प्रेरणा लेकर एक ऐसी शृंखला का निर्माण किया है जिसमें उसकी प्रवाहमयता एक संगीतकार की लयात्मकता, भावप्रवणता और अभिभूत कर देने वाले माध्यम के रूप में दिखाई देती है।

हालांकि एक फिल्म दूसरी फिल्म की अगली कड़ी नहीं है, लेकिन इनमें अभिव्यक्त मानव के अलगाव और उसके द्वारा समुदाय और साझे मूल्य विषयवस्तु का आधार हैं जिन्हें कलात्मक ढंग से बना गया है। *थ्री कलर्स* एक अद्भुत समन्वय है जिसमें अलग-अलग हिस्से मिलकर इसे संपूर्णता प्रदान करते हैं। ठीक उसी तरह जैसे—शीर्षक के तीन रंग मिलकर फ्रांसीसी झंडा बनाते हैं और एक शृंखला में बनाई गई तीन फिल्में एक अभिव्यक्ति के रूप में सामने आती हैं।

दूसरे स्तर पर ये फिल्में दार्शनिक अर्थों को इन सूक्ष्म संकेतों के साथ दर्शाती हैं कि मानव का सुख भौतिकवाद को त्यागने में निहित है। लेकिन स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व की अवधारणा का वर्णन संकेतात्मक तरीके से है और इसमें सामाजिक-आर्थिक शक्तियों को बहुत कम दर्शाया गया है।

ब्ल्यू में जूली (जूलिएट विनोश) मुख्य पात्र है जो दुर्घटना में मारे गए अपने पति और बेटी की मौत के सदमे को झेल रही है। जैसे-जैसे

कहानी आगे बढ़ती है, जूली अपने प्रख्यात संगीतकार पति के सहायक ओलिवर और अन्य पात्रों से बातचीत करती है। उनसे बातचीत करने पर उसे पता चलता है कि उसका पति जिसे वह बहुत चाहती थी, उसकी एक प्रेमिका थी जिसका एक बेटा भी है। इस दर्द में डूबी हुई वह स्वयं को अपने अतीत से अलग करने का निर्णय लेती है और नौकरी-पेशा महिलाओं के आवासगृह में रहने लगती है। वह अपनी संपत्ति अपने पति की प्रेमिका और उसके बेटे को दे देती है। साथ ही उसके बेटे को समाज में इज्जत और कानूनी मान्यता देने के उद्देश्य से उसे अपने पति का नाम भी दे देती है।

फिल्म की वेश्या पात्र का अपना एकाकीपन है। एक रात उस घटिया नाइट क्लब में अपने पिता को देखती है, जहां वह नग्न नृत्य करती है। दोनों महिलाएं अकेलेपन की वजह से एक-दूसरे के करीब आ जाती हैं। दोनों ही बंधनरहित हैं लेकिन उनकी स्वतंत्रता में त्रासदी अंतर्निहित है।

पेरिस की पृष्ठभूमि पर बनी इस फिल्म में कैमरा, संगीत और प्रकाश मिलकर ऐसे दृश्यों का निर्माण करते हैं जो दर्शक पर गहरा प्रभाव डालते हैं और स्वतंत्रता की खोज में मुख्य पात्रों के भीतर चल रहे अंतर्द्वंद्व को दर्शाते हैं। पूरी फिल्म में एक प्रकार की तीव्र कटुता विद्यमान है। मुख्य पात्र एक आत्म-केंद्रित दुनिया में रहती है।

शृंखला की दूसरी फिल्म *व्हाइट* का नायक कारोल पेरिस में नाई का काम करता है। वह अपनी फ्रांसीसी पत्नी से पीड़ित है जो उसका हर तरह से अपमान करती है। अपनी संपत्ति से बेदखल और अकेला वह परदेस में अपने हमवतन के संपर्क में आता है। आगे की कथा कारोल के देश पोलैंड में चलती है। वह अपने हमवतन की मदद से चोरी-छिपे फ्रांस से अपने देश चला जाता है। यह फिल्म समानता के आदर्श को दर्शाती है।

कारोल अपने देश पहुंचकर जमीन-जायदाद का धंधा शुरू करता है और अमीर हो जाता है। अपनी मानवीयता बनाए रखता है। वह अपनी मौत की झूठी खबर उड़ाता है और अपनी पत्नी को अपनी हत्या के आरोप में फंसा देता है।

पत्नी के साथ मिलने-जुलने से उसे पता चलता है कि वह उसे अभी भी प्यार करती है और वह उससे फिर से विवाह करने की मौन स्वीकृति पा लेता है। इस समझौते से वह समान हो जाता है।

इस त्रयी की अंतिम कड़ी *रेड* है जो कि खतरा, शर्म, हिंसा एवं प्रेम को दर्शाती है। जैसा कि ब्यू प्रसंग में होता है, कथा की शुरुआत एक कार दुर्घटना से होती है। कुत्ता इसका शिकार होता है। जेनेवा में बनी इस फिल्म में तीन मुख्य पात्र हैं — वेलेंटाइन, उसका प्रेमी और एक सेवानिवृत्त जज, जिनका आपसी संबंध जटिल है। वेलेंटाइन इस घायल कुत्ते को उसके मालिक—सेवानिवृत्त जज के पास ले जाती है। परंतु वह निपट हृदयहीनता दर्शाते हुए उसे लेने से मना कर देता है। ये दोनों पात्र कई बार मिलते हैं। जज का कामुक-दृश्यों के प्रति लगाव देखकर वेलेंटाइन घृणा से भर

जाती है। धीरे-धीरे दोनों प्रेम से मोहभंग की समान मानसिकता में हिस्सेदार हो जाते हैं। वेलेंटाइन अपने प्रेमी और जज अपनी मौत का इंतजार करते हैं। दोनों ही विश्वासघात और उपेक्षा के शिकार हैं। वेलेंटाइन के प्रेमी की कहानी इस फिल्म के ढांचे में गुंथी हुई है।

पूरी फिल्म में कड़वाहट, एकाकीपन और सहानुभूति के बदलते स्वर के साथ भावनात्मक आवेग को भी दर्शाया गया है। इसका अंत इसकी प्रतीकात्मकता और बाइबल-संबंधी संकेतों के लिए उल्लेखनीय है और इसमें मानव के भविष्य के प्रति आशा की अंतर्धारा सर्वोपरि है। त्रयी में दिखाए गए तीनों प्रमुख पात्र समुद्री तूफान में बचे हुए व्यक्ति हैं। ये तीनों फिल्मों को जोड़ने वाला सूत्र हैं। यह सूत्र मानव के एकाकीपन से निपटने के लिए आशा की किरण है और भावनात्मक ऊर्जा व भ्रातृत्व के विरल क्षणों को प्राप्त करने का माध्यम है।

स्टीवन स्पिलबर्ग की फिल्म *शिंडलर्स लिस्ट* समारोह की अंतिम फिल्म थी, जिसका अच्छे सिनेमा के प्रेमियों ने उत्साह से स्वागत किया। थॉमस कीनली के उपन्यास *शिंडलर्स आर्क* पर आधारित इस फिल्म में इतिहास की भयावह शक्तियों, जो नाज़ियों के रूप में प्रकट हुईं, के हाथों यहूदियों के नरसंहार को दर्शाया गया है। यह फिल्म न केवल मानवीय त्रासदी का दस्तावेज है, बल्कि यह मानव जाति के भविष्य के लिए आशा की किरण को भी दर्शाती है। हालांकि यह किरण टिमटिमाहट मात्र है।

शुरु से अंत तक फिल्म हमारे दिमाग में दहशत पैदा करती है। पहले ही दृश्य में पोलैंड में यहूदियों का सफाया किए जाने का अमानवीय दृश्य दिखाया गया है। उन्हें उनकी संपत्ति से ही बेदखल नहीं किया जाता, बल्कि मानवीय गरिमा से भी वंचित कर दिया जाता है। यह आतंक उस समय और अधिक दिल दहलाने वाला तथा कंपाने वाला रूप धारण कर लेता है, जब लोगों को कैंप से अलग कर, कुछ का खात्मा करने के लिए 'सफाया कैंपों' में और कुछ को प्लासजोव जैसे तथाकथित श्रमिक कैंपों में भेजा जाता है। मासूम बच्चों, स्त्री-पुरुषों और वृद्धों के मारे जाने का कार्य सुनियोजित तरीके से चलता रहता है।

मानव मूल्यों के इस बेरोक टोक धिनीने विध्वंस के दौरान ऑस्कर शिंडलर अपनी अंतरात्मा में कचोट महसूस करता है। बंदी यहूदियों के श्रम से मुनाफा कमाने वाला, लंपट और नाज़ी पार्टी का समर्थक शिंडलर, एस.एस. (नाज़ी पार्टी के स्वयं सेवक) के रूप में राक्षसों को देखता है और धीरे-धीरे अपने मजदूरों को मानव के रूप में देखने लगता है, साथ ही निकट भविष्य में उनके विध्वंस की त्रासदी को महसूस करता है। कई कठिनाइयों और एस.एस. द्वारा दी जाने वाली निरंतर धमकियों के बावजूद वह 1,500 यहूदियों को नरसंहार से बचा लेता है।

अंत में वह हृदयस्पर्शी क्षण आता है जब फासीवाद की शर्मनाक हार होती है और शिंडलर एक नाज़ी समर्थक के रूप में उन श्रमिकों से हृदयस्पर्शी विदाई लेता है, जिनके प्राण वह अपने यहां मजदूरी पर रखकर बचा सका था। वास्तव में यह फिल्म का महान क्षण है जिसमें

मानवीय सहानुभूति की महानता को दर्शाया गया है।

फिल्म में कोई फ्लैशबैक नहीं है, न ही इसमें कोई फंतासी या कल्पनालोक के दृश्य हैं बल्कि इसमें पूर्ण यथार्थ को वृत्तचित्र की तरह दिखाया गया है। लेकिन वृत्तचित्र के विपरीत इस फिल्म के पात्र मानवीय जटिलताओं को ऐतिहासिक संदर्भ में जीते हैं, जो पर्दे पर नाटकीय अंदाज में जीवंत हो उठते हैं।

यह फिल्म श्वेत-श्याम रंगों में बनाई गई है जो उस भयानक दौर को प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्त करने में सर्वथा उपयुक्त है। लोगों के सुनियंत्रित ढंग से विनाश के दृश्यों को दर्शाने के लिए चल-कैमरे का प्रयोग किया गया है।

यदि निर्देशक सिनेमाई माध्यम का बड़ी खूबी से उपयोग करके हमें चकित करता है, विचलित करता है, आतंक से कंपा देता है तो पात्रों ने जीवंत अभिनय का परिचय दिया है। हम अंग्रेज अभिनेता राल्फ फिन को ग्रैथ के रूप में देखते हैं जो हैवानियत का मूर्त रूप है तथा जिसे लोगों की नृशंस हत्या करने का कोई पछतावा नहीं है। ऑस्कर शिंडलर की भूमिका में नीएम नीसन अविस्मरणीय है। एक आतंकित, परिश्रमी, संवेदनशील और बुद्धिमान यहूदी की भूमिका में बेन किंग्सले ने शिंडलर के सचिव के रूप में उत्कृष्ट अभिनय किया है।

कनाडा से पौल विलारगान निर्देशित एक सशक्त फिल्म *द सेक्स ऑफ द स्टार्स* देखने को मिली, जिसमें एक संकटग्रस्त परिवार की जटिलताओं को दिखाया गया है। पिता, मां और एक किशोर पुत्र—इस फिल्म के तीन मुख्य पात्र हैं। पिता द्वारा लिंग-परिवर्तन करवाने के कारण परिवार की खुशियां बिखर जाती हैं। कामसुख से वंचित और चोट खाई हुई पत्नी अपने पति से घृणा करती है और क्रोधोन्माद में पीटकर उसे उसी के घर से बाहर निकाल देती है। पति शर्म के मारे अमरीका चला जाता है, लेकिन अपनी पुत्री और अपने कार्य-स्थल से भावनात्मक लगाव के कारण वह वापस लौटने पर मजबूर हो जाता है। लेकिन जब वह अपने पुराने सहकर्मियों से स्त्री-वेश में मिलता है, तो वे आश्चर्यचकित रह जाते हैं और उसके साथ काम करने से मना कर देते हैं। पिता न तो एक स्त्री है और न ही पुरुष — इससे उसकी हालत अजीब हो गई है। एक विख्यात वैज्ञानिक होने के बावजूद

लिंग-परिवर्तन के परिणामस्वरूप उसे अपनी जिंदगी अर्थहीन लगने लगती है।

पुत्री दुखी तथा अकेली पड़ गई है। वह अपनी मां को पसंद नहीं करती, पर अपने पिता को अभी भी प्यार करती है और उनका आदर करती है। वह अत्यंत बुद्धिमान और संवेदनशील लड़की है। वह दूर सितारों और आकाशगंगा को टकटकी बांधे निहारती रहती है। उसे ऐसा लगता है कि ये सितारे और आकाशगंगा बहुत सुखी हैं क्योंकि उन्हें यौन-संबंधी कोई समस्या नहीं है।

निर्देशक ने आसाधारण योग्यता का परिचय देते हुए क्लोज-अप



बहुचर्चित फिल्म 'शिंडलर्स लिस्ट', निर्देशक स्टीवन स्पिलबर्ग (अमेरिका)

फ्रेमों का उपयोग किया है जो चेहरे के भावों के माध्यम से आंतरिक दुख, क्रोध और प्रेम के दृश्यों को विशेष अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं। अत्यंत नाटकीय क्षणों में पात्रों के आंतरिक विक्षोभ को विशेष तौर पर अभिव्यक्त करने के लिए उनके चेहरों को अलग से दर्शाया गया है। इसमें एक गीतात्मक प्रवाह और काव्यात्मक बिंब विद्यमान है, जो कि मानव हृदय की पीड़ा को उद्घाटित करता है। प्रभावपूर्ण ढंग से फिल्माया गया किशोर पुत्री का दुखी चेहरा हमारे दिलो-दिमाग पर फिल्म समाप्त होने के बाद भी छाया रहता है।

वायजेक जार्ज बचनूर द्वारा लिखित एक नाटक है। लेखक का नाटक पूरा करने से पहले ही देहांत हो गया था, पर वह दृश्यों के क्रम को लिखकर छोड़ गए थे। तदंतर इसे विभिन्न देशों में ओपेरा सहित विभिन्न शैलियों में प्रस्तुत किया गया। अंतर्राष्ट्रीय फिल्म समारोह, 95 में हमें

इसका सिने रूपांतरण देखने को मिला, जिसे हंगरी के सज़ासज़ जानोस ने निर्देशित किया है और उसकी पटकथा भी लिखी है। निर्देशक ने सिनेमाई कला का एक अद्भुत नमूना पेश किया है। निर्देशन की महत्ता इस बात में है कि निर्देशक पात्रों को उनकी भीतरी दुनिया के परे देखता है। इसमें संवाद बहुत कम हैं। केवल चार मुख्य पात्र हैं — वायज़ेक, एक गरीब भूतपूर्व सैनिक है जो रोज़ कुआं खोदता है और रोज़ पानी पीता है, उसकी प्रेमिका मेरी, कैप्टन और डॉक्टर— ये चरित्र आधुनिक युग की अभिव्यक्ति का लाक्षणिक आयाम धारण कर लेते हैं।

आत्मसम्मान से रहित वायज़ेक इतना गरीब है कि अपनी प्रेमिका और बच्चे को सहारा देने के लिए स्वयं को गिनीपिग के रूप में एक सनकी डाक्टर के हाथों बेच देता है। उसे अपमानित कर घंटों कड़ी मेहनत करने पर मजबूर कर दिया जाता है।

माथ टिबोर का कैमरा वायज़ेक के संपूर्ण वातावरण को दर्शाने में विलक्षण रहा है। इसमें सफेद बर्फ से ढके पहाड़ों के प्राकृतिक दृश्यों के लांग-शॉट के जरिए दिखाया गया है। वायज़ेक के गंदे और भयावह ठंडे घर का कोना-कोना चित्रित किया गया है। इससे यह जबर्दस्त आतंक की सृष्टि करता है। प्रत्येक फ्रेम अपनी अभिव्यक्ति की सूक्ष्म क्षमता को प्रतिध्वनित करता है, जो कि वायज़ेक को सिनेमाई भाषा के जरिए संवेदनशून्य संसार में सामाजिक-विस्थापना के प्रतीक के रूप में दर्शाता है। कैप्टन अपने दंभी और पशुवत व्यवहार से मूर्ख पुरुष के आत्मतुष्ट मिथ्याभिमान का प्रतीक बन जाता है। डाक्टर तथाकथित वैज्ञानिक बुद्धि की अनेतिकता और क्रूरता का प्रमाण है। प्रेमिका यह दर्शाती है कि इस अमानुषिक एवं भयानक संसार में सुंदरता के लिए कोई जगह नहीं है। सिनेमाई कला का नमूना यह फिल्म हमें अविश्वसनीय ढंग से यह बोध कराती है कि वायज़ेक हमारे समय की कड़वी सच्चाई है।



दिजीरेवस्का निर्देशित 'क्रोज' (पोलैंड) का एक दृश्य

प्रवृत्ति उसे 'चीन की दीवार' के नीचे दबे खजाने को खोदने के लिए मजबूर कर देती है। इस अवैध कार्य में वह पूरे गांव को जुटाने में सफल हो जाता है।

गांव में एक और शिक्षित और सर्वप्रिय युवक है। वह जमीन को सुरक्षित रखने और वृक्षारोपण कार्य में लगा हुआ है। सिन्हुआ उसे मन की गहराइयों से प्यार करती है और उससे गर्भ धारण कर लेती है।

कथानक धीरे-धीरे पराकाष्ठा की ओर बढ़ता है, जिसमें सिन्हुआ को स्वतंत्र महिला के रूप में दर्शाया गया है, जो अपने पति और प्रेमी — दोनों को छोड़ देती है क्योंकि वह उन्हें महिलाओं के प्रति पुरातन पूर्वाग्रहों से ग्रस्त पाती है। सिन्हुआ के पति की नपुंसकता का पता अंत में नाटकीय अंदाज में चलता है। अंतिम दृश्य में सिन्हुआ जिस प्रकार अपने पति का सामना करती है, वहां ऊपरी तौर पर शक्तिशाली एवं पाशविक प्रवृत्ति वाला उसका पति दयनीय प्राणी के रूप में परिवर्तित हो जाता है। वह अपनी पत्नी के कदमों में सब कुछ न्योछावर करने को तैयार हो जाता है और उसके पर-पुरुष-गमन को भी माफ करने को तैयार हो जाता है—यह पूरा दृश्य देखने लायक है।

तीसरी दुनिया के रूढ़िवादी समाजों में महिला की मुख्य भूमिका पैतृक संपत्ति के उत्तराधिकारी पुत्र को जन्म देना मानी जाती है। महिलाओं के विरुद्ध इस आधारभूत पूर्वाग्रह ने बांझ औरतों की जिंदगी असहनीय बना दी है। *द स्टोरी ऑफ सिन्हुआ* में हम इसी प्रकार की महिला को मुख्य पात्र के रूप में देखते हैं। यिन ली निर्देशित इस फिल्म में इसकी उत्कृष्ट फोटोग्राफी के जरिए चीन के गांवों और उत्तरी चीन में 'चीन की दीवार' के अवशेषों के निकट रहने वाले लोगों की जिंदगी को दर्शाया गया है। सिन्हुआ का पति एक छोटा व्यापारी है जो गलत तरीकों को अपनाकर अमीर बन गया है। वह अपनी पत्नी के प्रति निर्दयी है और लड़के को जन्म न दे पाने के कारण उसे लगातार प्रताड़ित करता रहता है। धन-लोलुपता की

नानुई मोरेटी की *डियर डायरी* (इटली/फ्रांस) तीन प्रसंगों में दर्शाई गई एक फिल्म है। यह एक सादा लेकिन महत्वपूर्ण फिल्म है। पहले प्रसंग में वेस्पा स्कूटर पर रोम की गलियों में घुमाया जाता है। फिर हमें ऐसे विपादपूर्ण स्थान पर ले जाया जाता है, जहां पासोलोनी की हत्या हुई थी। दूसरे प्रसंग में कुछ लोगों को अपने मित्रों को फोन करने की कोशिश करते हुए दिखाया गया है, जिसमें उनके शैतान बच्चे लगातार अड़चन पैदा करते रहते हैं। यह बिगड़े हुए बच्चे पर विनोदपूर्ण कामेडी है।

अंतिम प्रसंग में जीवन, मृत्यु और एक अक्षम चिकित्सा व्यवस्था के बारे में दिखाया गया है। यह एक सशक्त फिल्म है जिस पर एक कल्पनाशील कलाकार की छाप है, जो कि एक बच्चे की आश्चर्यचकित आंखों के माध्यम से एक साहसी कहानी सुनाता है।

बहुत गहरे तक विचलित कर देने वाली फिल्म *क्रोज़* (पोलैंड) में पोलैंड के समकालीन समाज की एक दुखद व्याख्या है जिसमें एक छोटी-सी



‘द साइलेंट ऑफ द पैलेस’ का एक नाटकीय दृश्य। द्यूनीशिया की इस फिल्म को मौफिद तलाली ने निर्देशित किया है।

लड़की को मानसिक पीड़ा से गुजरना पड़ता है क्योंकि उससे बात करने, उसे प्यार करने और उसकी देखभाल करने के लिए कोई भी नहीं है। मां-बाप के प्यार से वंचित यह अकेली बच्ची खाली सड़कों पर घूमती है। वह गोलमटोल पर छोटे-से बच्चे को बातचीत करने के लिए अपने साथ लेकर विभिन्न जगहों पर घूमने जाती है। दोनों शहर, समुद्र-तट और यहां तक कि समुद्र में भी घूमते हैं।

इस विशाल संसार में केवल इन दोनों बच्चों की गतिविधियां ही जीवन का संकेत देती हैं। यह अकेली लड़की कभी-कभी छोटे बच्चे से क्रूरतापूर्ण व्यवहार करने लगती है, लेकिन लड़की के रूप में उसके प्रति मातृत्व और अपनी उम्र से ज्यादा सयानापन भी दर्शाती है। उस

लड़की की छवि इस समाज के, जिसमें हम जी रहे हैं, खालीपन और निर्दयता का प्रतीक है। लंबी और सूनी पड़ी सीढ़ियों के शॉट और लड़की द्वारा इस पर चढ़ने-उतरने की आवाज उस फिल्म की अशांत स्थिति को दर्शाती है। फिल्म का अंतिम जबर्दस्त दृश्य हमारे अंदर के खोए हुए बच्चे से बात करता है। दोरोटा के दिज़ीरेवस्का निर्देशित यह फिल्म हमारे दिलोदिमाग पर लंबे समय तक छाई रहेगी।

द्यूनीशिया फ्रांस की फिल्म *द साइलेंट ऑफ द पैलेस* इस समारोह की अविस्मरणीय फिल्मों में एक थी। इसका दुखद संगीत, गुलाम बनाई गई महिलाओं के चेहरे के साथ-साथ अवैध बेटी की दुखद दुनिया को सामंती अभिजात वर्ग की विलासितापूर्ण जीवन-शैली के बरअक्स दिखलाने से फिल्म अत्यंत प्रभावशाली बन गई है। वे सामाजिक और राजनैतिक संदर्भ, जिनमें फिल्म बनाई गई है, पात्रों और उनकी मनोवैज्ञानिक विशेषताओं को प्रामाणिकता प्रदान करते हैं।

मौफिद तलाली द्वारा निर्देशित इस फिल्म में कथानक मुख्यतया फलेशेवक में चलता है, जबकि इसका घटनाक्रम अतीत और वर्तमान में निरंतर चलता रहता है। अलिया, द्यूनीशिया की 25 वर्षीया गायिका है जो सातवें दशक के पूर्वार्द्ध में स्वतंत्रता की लड़ाई से पहले महल में एक नौकर की बेटी के रूप में अपने बचपन और जवानी के दिनों को याद करती है। कैमरे द्वारा जहां एक ओर महल, शाही ठाट-बाट राजकुमारी की चमक-दमकपूर्ण जीवन शैली, उनका घमंडी व्यवहार

और उनकी विलासिता को दर्शाया गया है, वहीं दूसरी ओर ठीक इसके विपरीत उन गुलाम महिलाओं के नीरस जीवन को भी दिखाया गया है, जिन्हें उनके बचपन में ही शाही महलों में बेच दिया जाता था, किशोरावस्था में जिनका यौन-शोषण होता था और बूढ़ी हो जाने पर शाही बावर्चीखाने में काम पर लगा दिया जाता है।

इस शाही ठाट-बाट, समृद्धि और वैभव के बावजूद इन महिलाओं की दयनीय स्थिति का चित्रण बहुत ही प्रभावशाली ढंग से किया गया है। अलिया की मां को बहुत आकर्षक और कठोर महिला के रूप में दर्शाया गया है। शाही महल की एक नीम-हकीम नर्स द्वारा उसके

पृष्ठ 59 पर जारी

अंतर्राष्ट्रीय फिल्म समारोह : एक रिपोर्ट

हामिद हुसैन

भारत का 26वां अंतर्राष्ट्रीय फिल्म समारोह 10 से 20 जनवरी तक इस वर्ष बंबई में संपन्न हुआ। भारत में अंतर्राष्ट्रीय फिल्म समारोह की एक परंपरा यह है कि इसे एक वर्ष दिल्ली में तथा दूसरे वर्ष किसी अन्य महानगर में रखा जाता है। पिछले वर्ष 25वां समारोह कलकत्ता में हुआ था, स्वाभाविक रूप से इसे इस वर्ष दिल्ली में रखा जाना चाहिए था। लेकिन दुनिया भर में वर्ष 1995 को सिनेमा के शताब्दी वर्ष के रूप में मनाया जा रहा है। 23 दिसंबर, 1895 को फ्रांस के ल्यूमिए बंधुओं (लुई और आगस्ट ल्यूमिए) ने पहली बार दुनिया के सामने इस हैरतअंगेज आविष्कार का प्रदर्शन किया था। उसके लगभग छः महीने बाद ही, यानी 7 जुलाई, 1896 को बंबई में वाट्सन होटल में जादुई

लालटेन का प्रदर्शन किया गया। चूंकि भारत में फिल्मी इतिहास की शुरुआत बंबई से होती है और आज भी यह नगर फिल्मों की वास्तविक राजधानी बनी हुई है इसलिए सिनेमा के शताब्दी वर्ष में अंतर्राष्ट्रीय समारोह का बंबई में होना इसकी महत्ता को और बढ़ा देता है।

इस वर्ष समारोह का उद्घाटन श्याम बेनेगल की फिल्म *मम्मो* से हुआ और समापन स्टीवन स्पिलबर्ग की फिल्म *शिंडलर्स लिस्ट* से। ये दोनों ही फिल्में एक ही जैसी त्रासदी पर हैं। अलबत्ता समय, काल और स्थितियां जरूर अलग हैं। *मम्मो* में जहां विभाजन के बाद भारत और पाकिस्तान के बीच आने-जाने और बसने की कानूनी अड़चनों को मानवीय दृष्टि से देखा गया है, वहीं *शिंडलर्स लिस्ट* में द्वितीय विश्व

युद्ध के दौरान हिटलर के इशारे पर नाजियों द्वारा यहूदियों पर किए गए अत्याचारों को रेखांकित किया गया है।

समारोह की 11 दिन की अवधि में दो सौ से अधिक फिल्मों का प्रदर्शन हुआ जिनमें भारत तथा विश्व के अन्य देशों की प्रतिनिधि फिल्में थीं। फिल्म समारोह निदेशालय ने नियमित वर्ग बनाए रखते हुए भी बंबई फिल्म समारोह में कुछ विशिष्ट देने की कोशिश की। पर्दे की दुनिया का वास्तविक जादूगर, इतालवी फिल्मकार फेदेरीको फेलीनी की तमाम फिल्में



‘द साइलेंट आफ द पैलेस’ का एक दृश्य



बंबई में दिखाई गई। फेलीनी की 20 कथा और तीन अन्य फिल्मों में से कई तो भारत में कभी दिखाई ही नहीं गई थीं।

फेलीनी की अनेक फिल्में आत्मकथा प्रधान हैं। एक ओर उनका सिनेमा विचारों की दुनिया से सार्थक संवाद करता है तो दूसरी ओर वह फंतासी की अद्भुत दुनिया में सहजता से चले जाते हैं। फेलीनी सर्कस से बहुत प्रभावित थे। वह सर्कस को उसके संपूर्ण स्वप्नों, फंतासी और कलात्मक उड़ान के साथ अपनी फिल्मों में लाते हैं, फेलीनी की फिल्मों में भीमकाय स्त्रियां, बौने, युद्ध की स्मृतियां, इरोटिसिज़्म, दुनिया की बारीकियां, अनोखा परिहास भाव, धर्म के ठेकेदारों का तीखा मखौल — ये सभी शामिल हैं।

उनकी फिल्में एक बढ़ते हुए बच्चे द्वारा समाज की कुरूपता और भ्रष्टाचार के खोज की कहानी हैं। इस बच्चे में एक सामान्य मानव के गुण नहीं हैं बल्कि वह किसी दूसरे ग्रह से आए हुए प्राणी की तरह है जो उस ग्रह से केवल मासूमियत और निर्दोषता लेकर आया है। फेलीनी सदैव बचपना और मासूमियत की तवाही और भ्रष्टाचार की इस त्रासदी का चित्रण करते रहे हैं। फेलीनी की फिल्मों का पुनरावलोकन वास्तव में बंबई फिल्म समारोह की एक उपलब्धि रही।

पृष्ठ 64 पर जारी



श्याम बेनेगल निर्देशित ‘मम्मो’ के एक दृश्य में सुरेखा सीकरी और फरीदा जलाल

‘मम्मो’

श्याम बेनेगल की इस नई फिल्म की विषयवस्तु भारत विभाजन की त्रासदी पर आधारित है।

मम्मो महमूदा बेगम (फरीदा जलाल) को उनकी दो बहनों द्वारा दिया गया उपनाम है। पानीपत में जन्मी मम्मो का विवाह लाहौर के एक व्यक्ति से होता है और विभाजन के पश्चात महमूदा बेगम और उनके पति स्वतः पाकिस्तान के नागरिक बन जाते हैं। पति की मृत्यु के बाद जायदाद के झगड़े के संबंध में मम्मो के ससुराल वाले उन्हें घर से निकाल देते हैं। वह दुखी हालत में किसी तरह बंबई पहुंच जाती है, वहां उनके रिश्तेदारों में उनकी केवल दो बहनें रहती हैं। वह अपने वीजा की वैधता की अवधि लगातार बढ़वाती रहती हैं और अंत में जब यह संभव नहीं हो पाता तो एक दलाल को रिश्वत देकर विदेशियों की सूची से अपना नाम हटवाने की कोशिश करती हैं।

लेकिन उन्हें सफलता की शांति क्षणिक ही मिलती है। जांच-पड़ताल में दलाल पकड़ा जाता है और सभी गैर-कानूनी रूप से रह रहे विदेशी नागरिकों को पकड़ लिया जाता है। 24 घंटे के अंदर मम्मो को पाकिस्तान भेज दिया जाता है जहां उनका कोई घर नहीं है। लेकिन फिल्म का अंत त्रासद या निराशाजनक नहीं है। मम्मो दुबारा लौटती हैं—अपने मौत का प्रमाण पत्र साथ लेकर, जिसे उच्चायोग को भेज दिया जाता है। फाइलों में मम्मो मर चुकी हैं पर जैसा कि अंत में वह कहती हैं कि अब मैं एक जिन्न हूँ, जिसके पास चिराग होगा वही अब मुझे देख सकेगा।

इस फिल्म में फरीदा जलाल ने मम्मो के चरित्र को एक अद्भुत छवि प्रदान की है। मम्मो जीवन से सार्थक संघर्ष कर रही हैं। वह आसानी से पराजित नहीं होना चाहती हैं बल्कि एक सकारात्मक नजरिए से अपने दुखी जीवन को एक रस प्रदान करती हैं। जबकि मम्मो की बड़ी बहन फय्याजी (सुरेखा सीकरी) एक दूसरी तरह की औरत है। यद्यपि वह भी मुसीबतों की मारी है लेकिन उसने जीवन से सिर्फ संघर्ष किया है उसका आनंद नहीं उठाया है। सुरेखा ने फय्याजी की भूमिका एक चुनौती की तरह स्वीकार की है। □

— हामिद



चार कविताएं : हरिओम राजोरिया

मेरा घर

जल्दी-जल्दी चलूं
तब भी
बहुत दूर है मेरा घर
वे लोग मुझसे अलग हैं
जो हर दर्जे में पास हुए
जल्दी मिली जिन्हें नौकरी
बड़ी जल्दी हुए जवान
और जल्दी ही हो गए बूढ़े
मेरा उनका क्या मेल
जो एक झटके में
चढ़ गए सीढ़ियां
और पहुंच गए अपने घर
मैं धीरे-धीरे चलूंगा
धीरे-धीरे
पहुंचूंगा अपने घर।



रेखांकन : हेम ज्योतिका

आवाज

इस दरवाजे से
उस दरवाजे से
कहीं कोई आवाज नहीं
शब्द ओछे हैं
थके हुए हैं शब्द
तनिक चले नहीं
कि बैठ जाते हैं
हवा भी चलते हुए
आवाज नहीं करती
क्या पतंगों ने भी
अपने पंखों के नीचे
छिपा लिया उड़ने का संगीत
किसलिए यह मौन?
पूछता हूं खुद से
और चुप लगा जाता हूं
अनबोला होना बुरा है
उससे भी बुरा
टकटकी लगाए छत को घूरना
भीतर कुछ बजने लगे
इसके लिए भी चाहिए
बाहर थोड़ी-सी आवाज।

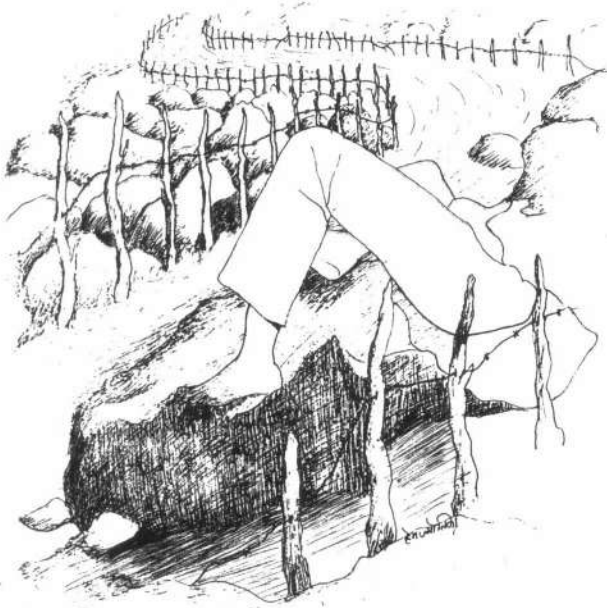
याद

रिक्त आकाश को भरने
इस तरह हाथ बांधे
मेघ नहीं आते
इस तरह उदासी में डूबी
सांझ नहीं आती
न जून आती इस तरह
गर्म हवाओं के साथ

भीतर से चीर दे जो आदमी को
ऐसी बेचैनी कभी नहीं आती
इस तरह चुपचाप

मौत-सा सन्नाटा लिए
इस तरह अचानक
घर में बीमारी भी नहीं आती

जिस तरह आती है तुम्हारी याद
कोई नहीं आता उस तरह।



रेखांकन : हेम ज्योतिका

चलते हुए

मैं अंधेरे में चल रहा हूँ
चल रहा हूँ नींद में
वर्षों बीत गए चलते हुए
पर अभी तक गिरा नहीं

अनेक कंटकों में
अनेक संकटों के बीच
अनेक भूखों के बाद भी
बचा हूँ शेष!

गोधूली के सामने पंछी

मानस रंजन महापात्र

इस बार फिर से
लापता हो जाऊंगा

एक पांव पाताल में तो
एक होगा आकाश पर
एक आंख समुद्र में तो
एक होगी रेगिस्तान पर
कोई नहीं होगा चारों ओर, दरकार भी क्या
कौन है हाथ से, प्रिय मित्र भी
गीता, ग्रंथसाहिब, बाइबिल, कुरआन
सबके लहर में

इस बार मैं अपनी मिट्टी से होंठ को
भेज दूंगा किसी सूनी जगह पर

लापता व्यक्ति को खोजते हैं
रेडियो, दूरदर्शन, अखबार, सभी
वह खुद भी है अंजान मगर
कहां पर है वह! ईश्वर से पत्रपेटी तक
अपने को समर्पित करते हैं खामोशी में
फिर कटघरे में गुमसुम खड़ा है समय
उसी वक़्त सीटी बजी और
रेलगाड़ी छोड़ देती है स्टेशन

मुझे पता है ये सब, आंसू गिरने के दिन से
इसीलिए चाहता हूँ दूर हो जाऊँ अपने ठिकाने से।

कहानी कुछ इस तरह, कि मुझे
संभाल लिया था एक पेड़ ने
अब आतंक छा गया है चारों ओर, सुख की अपेक्षा में
जलते सूरज से अर्धी तक
मुझे अब शब्दों के ही भीतर से चुपचाप मुड़कर
पीछे की ओर चलना होगा।

फिर से इसबार
लापता हो जाऊंगा
मत पूछो, कहां पर समाप्त होगी इस गति की जड़ता
अब जीवन नहीं, दे सको तो
दे दो कुछ मुहूर्ती की मृत्यु की तरह तृषित
गहन खामोशी।।

अनुवाद : दीप्ति प्रकाश

झांसी

अशोक राजा

तमिल से अनुवाद : ह. दुरैस्वामी

“झांसी! पिल्लैयार को तुमने प्रणाम नहीं किया?”

“सॉरी, ईश्वर! भगवान में मुझे विश्वास नहीं है।” उसका उत्तर था।

एक क्षण के लिए मैं स्तब्धित हुआ। किसी नास्तिक महिला को मैं पहली बार देख रहा था। इसलिए मैंने अविश्वास के साथ कहा—

तीसरी बाद मेरी श्रीमती ने प्रसव किया तो मैंने मनौती के अनुसार तिरुतणी जाकर मुरुगन के दर्शन किए और मुंडन करा लिया। तब याद आया कि झांसी रानी आजकल यहीं रहती है। लौटने के पहले किसी भी तरह उसे देख लेने का निश्चय किया।

झांसी और मैं इसके पहले ईरोड में एक साथ काम कर रहे थे। झांसी लापरवाह, साहसिन और आत्मविश्वासी थी। उसे लोग घमंडी भी कहते थे। वह नाजुक मिजाज भी थी, इसलिए किसी को उसके निकट संपर्क में आने की हिम्मत नहीं होती थी। जब उसके अनुभाग में मुझे काम करना पड़ा तो मैंने जान लिया कि मेरे व्यवहार की मृदुता, पारस्परिक सहयोग-भाव आदि से वह प्रभावित है। झांसी इतनी जल्दी पिघल जाने वाली जीव न थी। जब उसको पूरा विश्वास हो गया कि मेरे व्यवहार में कोई कलुष नहीं है तभी वह सहज भाव से मुझसे मिलने-जुलने लगी। उसकी नेकी और सहजता ने मुझे शीघ्र ही गद्गद कर दिया।

एक दिन कार्यालय बंद होने के बाद मैं और झांसी बस स्टैंड की ओर जा रहे थे। रास्ते में पिल्लैयार मंदिर के पास पहुंचते ही मैंने चप्पलें उतारीं, मंदिर गया और नमस्कार करके लौटा। झांसी ने न प्रणाम किया न मंदिर की ओर दृष्टि फेरी। इससे मैं कुछ विस्मित हुआ।



रेखांकन : राजेंद्र गायकवाड़

“यह सब पुराना फैशन है, झांसी!”

“मैं फैशन देखकर चलने वाली नहीं हूँ। सिर्फ इने-गिने लोग ही भगवान को नहीं मानते। इसलिए इसे फैशन मानने को भी तैयार नहीं हूँ।”

“क्या यह मानती हो कि हमसे परे एक शक्ति है?”

“किसके लिए?”

“हमारे लिए ही। इस नश्वर जीवन के लिए उसमें आने वाले कष्टों के लिए उस अपरा शक्ति से पुकार करने पर मिलने वाली आत्मतृप्ति के लिए।”

“मैं सिर्फ विश्वास को प्रणाम नहीं कर सकती, ईश्वर! पुकार करने की अपेक्षा सामना करने में ही आत्मतृप्ति मिलती है ... यही मेरी मान्यता है।”

“अकेली खड़ी रहकर सामना करने की अपेक्षा एक सहायक को साथ रखकर सामना करने से मनोविज्ञान की दृष्टि से बल मिलेगा।”

“मेरा बल मैं आप ही हूँ, ईश्वर! अकेली लड़ने से मिलने वाली विजय उसमें मिलने वाली खुशी की तुलना कहाँ?”

“कैसे कह सकती हो कि विजय निश्चित है?”

“सहायक को साथ रखकर लड़ने पर भी क्या विजय निश्चित है?”

“जिसे हम जीत नहीं सकते वह शक्ति देवी है, झांसी! हम प्रकृति पर विजय नहीं पा सकते! मृत्यु भी प्रकृति का ही नियम है।”

“ईश्वर, मृत्यु एक नियति है! जहाँ जन्म है वहाँ मृत्यु अवश्य रहेगी। धनी नामक एक वर्ग हो तो निर्धन नामक एक वर्ग होगा ही।”

“तुमसे तर्क करके मैं जीत नहीं सकता। लेकिन एक बात तो निश्चित है। जीवन सदा प्रकाश में ही नहीं रहता। तुम्हें अंधकार को भी देखना ही होगा। उस अंधकार में तुम्हें मालूम नहीं होगा कि तुम्हारे मित्र कौन हैं और

शत्रु कौन! तुम अपने साथियों को भी पहचान न पाओगी। उस भूले पथ में, उस अंधकार में तुम्हें प्रकाश की एक पतली किरण को ढूँढना पड़ेगा। वह ढूँढना ही प्रार्थना है। वह प्रकाश किरण ही शक्ति है, मेरी भाषा में भगवान है।”

झांसी विद्रूप से हंस पड़ी और बोली, “क्या मुझे शाप दे रहे हो, ईश्वर?”

मैं हड़बड़ा गया। नकारने के पहले ही मुंह बिचकाकर लापरवाही जताई।

“तुम्हारे पक्ष की जीत के लिए अंधकार और प्रकाश की उपमा दे देना काफी नहीं है, ईश्वर! अंधकार आए, तब मैं देख लूँगी।”

कह नहीं सकता कि अंधकार आया या नहीं, क्योंकि झांसी एक बैंक अफसर से शादी करके चली गई। कभी-कभार उसका पत्र आता था। उसके पुत्र जन्म के बारे में, उनको मिली पदोन्नति के बारे में, घर खरीदने के बारे में ऐसा ही कुछ न कुछ लिखा करती थी। हाल में एक पत्र में अपने तिरुतणी में रहने के बारे में लिखा था।

तिरुतणी में उसके घर का पता लगाना मुश्किल न रहा। खरीदारी करके झांसी के घर पहुंचा तो शाम के साढ़े सात बच चुके थे।

द्वार खुला था। एक महिला कुर्सी पर शिथिल-सी बैठी धरती को ताक रही थी। देखने में झांसी जैसी ही थी। कुछ वृद्धा-सी हो गई थी। इसलिए मैं कुछ असमंजस में पड़ा तो उसने मुंह उठाकर देखा। तुरंत उसका मुख खिल गया।

“आइए, ईश्वर! देखे बहुत दिन हो गए। मुंडन के कारण पहचान ही न सकी। कैसे हैं?” बोलते हुए उठी।

लंबे अर्से के बाद मिलने से बहुत खुशी हुई। मैंने मुस्कराकर धैली को उसकी ओर बढ़ा दिया।

“यह क्या है, ईश्वर?”

“बच्चे के लिए कपड़े। कुछ मिठाई।”

झांसी ने धैली लेकर मेज पर रख दी।

“कैसे हैं? देखे सात-आठ वर्ष बीत गए न?”

“हां, इतना समय तो हो गया होगा। तुम तो पत्र भी नहीं लिखतीं।” मैंने शिकायती लहजे में कहा।

आफिस और साथियों के बारे में झांसी बड़े चाव से पूछ-सुन रही थी। मैं भी थका नहीं था। उसने झगड़ालू धर्मराज के बारे में भी पूछा तो मुझे विस्मय हुआ।

“उस समय उनका व्यवहार पसंद नहीं आता था, ईश्वर! लेकिन मैं किसी भी मनुष्य से पूरी-पूरी घृणा नहीं करती।” वह स्पष्ट करने लगी।

“अभी भी तुम वही झांसी हो।” मैंने मुस्कराकर कहा।

झांसी कुछ नहीं बोली। उत्तर में कुछ मुस्कराई। उसकी उंगलियां मेरी दी हुई धैली के ऊपर रेंग रही थीं।

“खोलकर तो देखो, झांसी!” मैंने आग्रह किया।

झांसी ने धैली खोली नहीं। ऐसा लगा मानो उसने मेरी बात सुनी ही न हो। मैं कमरे में दृष्टि दौड़ाने लगा। दीवार पर भगवान की कोई तस्वीर नहीं थी।

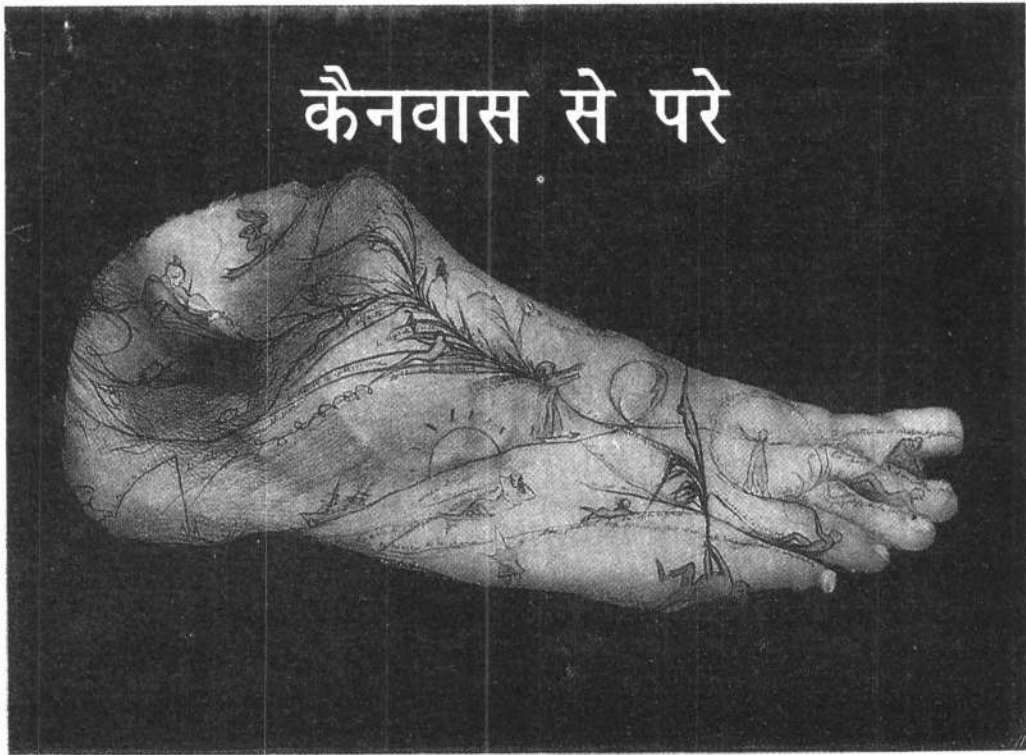
“अरे झांसी! मुझे आए एक घंटा हो गया है। लोग कहाँ हैं? तुम्हारे पति दूर पर हैं क्या? बच्चा कहाँ है? उसका नाम पृथ्वी है न?”

झांसी ने सूनी दृष्टि से मुझे देखा। मैंने बिना संकोच के उसके चेहरे को गौर से देख कर पढ़ने की कोशिश की। झांसी ने तुरंत अपना मुंह फेर लिया। मैं सन्न रह गया। झांसी ऐसे हारने वाली महिला तो नहीं थी।

“क्या हुआ झांसी?”

इस बार उसके मुख पर शोक की छाया थी। मानो रुलाई रोकने के लिए रूमाल से मुंह पोंछ रही हो। उसने लंबी सांस ली।

पृष्ठ 55 पर जारी



आनैत मेसाजे की एक कृति

समकालीन फ्रांसीसी कला पर मिथिलेश श्रीवास्तव

राष्ट्रीय आधुनिक कला संग्रहालय ने इस वर्ष फरवरी महीने में समकालीन फ्रांसीसी कला की एक प्रदर्शनी का आयोजन किया था जिसमें फ्रांस के वरिष्ठ और युवा कलाकारों ने भाग लिया। कलाकारों की संख्या तेरह थी। हेनरी क्लाडे कौसे और अंजली इला मेनन उस प्रदर्शनी के क्रमशः फ्रांसीसी और भारतीय कमिश्नर थे। प्रदर्शनियों के आयोजन में कमिश्नरों के दृष्टिकोण महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

कौसे मानते हैं कि फ्रांस के लोगों को समकालीन भारतीय कला की जानकारी कम है। यह एक महत्वपूर्ण लेकिन चौंकाने वाली बात थी क्योंकि दो प्रजातांत्रिक देशों की संस्कृतियों के बीच अपरिचय गैर-रचनात्मक होता है। अपरिचय के कारणों की पड़ताल की जानी चाहिए। क्या राजनयिक प्रयासों में कहीं कमी है? क्या साम्राज्यवाद के विघटन के बाद की खेमेबाजी इसके लिए जिम्मेवार है? एक सच्चाई यह भी है कि संस्कृतियों की अंतर्धाराएं भौगोलिक सीमाओं को खुद नहीं तोड़ पाती हैं, इसके लिए अधिक से अधिक परस्पर प्रयासों की जरूरत होती है। लेकिन शायद कौसे के विचारों से पूरी तरह सहमत

भी नहीं हुआ जा सकता है क्योंकि पिकासो सरीखे नाम भारत में घर-घर में जाने जाते हैं। लेकिन यह भी सच है कि किसी भी कालखंड में सांस्कृतिक आदान-प्रदान की प्रक्रिया की गति धीमी पड़ जाए, तो अपरिचय की गहराई बढ़ जाती है। आधुनिकता की अप्रतिगामी प्रवृत्तियां इसके लिए कुछ हद तक जिम्मेदार हो सकती हैं। अत्याधुनिक संचार प्रणालियों और ध्वनि की गति से तेज चलने वाले वाहनों के युग में भी अपरिचय को रेखांकित किया जा रहा है। क्या वैज्ञानिक उपलब्धियां सांस्कृतिक अपरिचय को कम करने या समाप्त करने में नाकाम रही हैं?

संस्कृतियों का भूमंडलीकरण संभव न होने देने के कारणों में शायद एक कारण यह भी हो सकता है कि संस्कृति का संबंध स्थानीयता, वहां के लोगों, उनकी आदतों, उनके व्यवहारों, उनकी मानवीयता और कोमलता और उनके सौंदर्य बोध से है। इन मानवीय गुणों का आयात या निर्यात संचार प्रणालियों या आवागमन के तेज माध्यमों से नहीं किया जा सकता है। दो देशों या दो संस्कृतियों के सीधे परस्पर संपर्क

से ही संभव हो सकता है। उपनिवेशवादी प्रवृत्तियाँ अपना रूप बदल कर वाणिज्य, व्यवसाय और बाजार का रूप धारण कर रही हैं। इसलिए यह सावधानी बरतना भी जरूरी है कि सांस्कृतिक परिचय के प्रयास व्यवसाय और व्यापार के ही हिस्से न बनकर रह जाएं। फ्रांसीसी समकालीन कला की प्रदर्शनी कई अर्थों में महत्वपूर्ण थी।

स्थानीयता संस्कृति का प्रमुख अंग है। संस्कृति का आदान-प्रदान स्थानीयता का आदान-प्रदान था। शायद इस सच्चाई से फ्रांसीसी कलाकार वाकिफ थे। तभी प्रदर्शनी के उद्घाटन के कई सप्ताह पहले भारत आकर उन्होंने स्थानीय बनने की कोशिश की थी। दिल्ली के बाजारों को कला-निर्माण की सामग्रियों के लिए उन्होंने छान मारा था। यहां के भूदृश्यों को देखा, समझा, परखा। स्थानीय कलाकारों और कामगारों से वे मिले। परिचय बढ़ाया। अपनी भारतीय समझ को बढ़ाने के लिए (शायद) उनके सक्रिय सहयोग से कलाकृतियाँ बनाई और लगाई (इंस्टाल कीं)। भारतीय भूमि पर भारतीय परंपरा और व्यवहार को बरतने का यह प्रयास बेमिसाल था।

कौसे की बात लेकिन कुछ हद तक सही भी साबित हुई कि फ्रांस के लोग भारतीय कला से कम परिचित हैं। क्योंकि सारे ईमानदार प्रयासों के बावजूद, भारतीय सामग्री और भारतीय कलाकारों और कारीगरों के सक्रिय सहयोग के बावजूद फ्रांसीसी सोच, व्यवहार और शिल्प ही उभरकर आया था। शायद अल्प परिचय के कारण न तो अपनी संस्कृति दूसरों को ओढ़ाई जा सकती है और न दूसरों की संस्कृति ओढ़ी जा सकती है। कौसे का ही कहना था कि फ्रांसीसी कलाकारों को लगता है कि पेंट करने के लिए अब कुछ भी नया नहीं बचा है। इसलिए वे ईजल पेंटिंग और कैनवास से इतर कुछ करने की बात सोचते हैं। हालांकि कौसे फ्रांसीसी कलाकारों से सहमत नहीं होते हैं। जब वह कहते हैं कि फ्रांसीसियों का सोचना भ्रम है, तो कौसे भारतीय संवेदना के काफी निकट होते हैं क्योंकि निर्जीव या सजीव, खाली या भरे, स्पेस या शून्य की संभावनाओं के चूकने की परिकल्पना भारतीय दर्शन के नजदीक नहीं है। बल्कि यह सोच यांत्रिक समाजों की ऊब की उपज है। मां और उसके बच्चे के बीच के संबंध की संभावना अनंत है। दूसरों से अलग दिखने और विचित्र लगने की मानसिकता भी फ्रांसीसियों में काफी दिखाई देती है। यह विचित्रता और चमत्कार सोच, विषयवस्तु, कैनवास और स्पेस आदि सब में दिखाई पड़ते थे। ऊब चुके समाज का सर्जक दूसरी दुनियाओं में झांकता है। यह शाश्वत समस्या है। पिकासो जैसे महान कलाकार के बारे में कहा जाता है कि उसने अफ्रीकी संस्कृति (आदिम) से बहुत कुछ ग्रहण किया था। मतीस और गोगां ने भी दूर-दराज की संस्कृतियों से प्रभाव ग्रहण किया था।

अवांगार्ड फ्रांसीसी कला अधिकांशतः आधुनिक प्रौद्योगिकी के इस्तेमाल से सर्जित की गई थी। कैनवास से मुक्ति पाने की कोशिश भी थी। बुद्धि, विज्ञान, सज्जा, शिल्प के कारण वह क्षणभंगुर भी लग रही थी। कहा जाता है कि कविता एक सहज कला है, क्योंकि उसकी

सृजन सामग्री और संरक्षण कम खर्चीला है। फ्रांसीसी कला के कुछ इंस्टालेशन (संरचनाएं) इतनी खर्चीले थे कि उन्हें कला का दर्जा देना कष्टप्रद था। पेरिक सारिन का 20 टी.वी. सेटों का 'इंस्टालेशन' इसका एक उदाहरण है। इस 'इंस्टालेशन' की रचनात्मकता बिजली की उपलब्धता पर निर्भर है।

‘प्रवेश’ शीर्षक से लगी तेरह फ्रांसीसी समकालीन कलाकारों की कलाकृतियों में इंस्टालेशनों की संख्या कम नहीं थी, जो कि उस फ्रांसीसी प्रवृत्ति का ही समर्थन है कि ईजल चित्रकला की संभावनाएं समाप्त-सी हो गई हैं।

परंपरा और आधुनिकता का निषेध करती इन कलाकृतियों में उत्तर-आधुनिकता की प्रवृत्तियाँ भी देखी जा सकती थीं। अधिकांश कलाकार अपेक्षाकृत नई पीढ़ी के थे और फ्रांस में चर्चित हैं। चित्रकला और मूर्तिशिल्प की स्थापित विधियों को छोड़कर चलने वाले कलाकारों ने अपनी कलाकृतियाँ हिंदुस्तान में ही बनाई। पहले से बनी-बनाई चीजों को संग्रहालयों में अपने ढंग से रखकर या सजाकर वे कहना चाहते थे कि कला, कलाकार की दृष्टि में होती है। स्पेस या खाली जगह को अपने ढंग से भरने को भी वे कला कहते हैं। फ्रांसीसी कला में अतः कलाकार की दृष्टि और खाली जगह भरने की कला महत्वपूर्ण दिखी।

देखना और खाली जगह को भरना कला के दो सार्वभौमिक दर्शन हैं, जिनका समर्थन भारतीय परंपरा और दर्शन भी करते हैं। लेकिन भारतीय सार्वभौमिकता में आध्यात्मिकता का स्थान काफी ऊंचा है। कला भारतीयों में जीवन के अंग के रूप में थी—विशेषकर ग्रामीण और आदिवासी जीवन में। मितव्ययिता और चीजों को जरूरी उपयोग और उपभोग भी कला है जो भारतीय जीवनशैली में देखी जा सकती है।

पेरिस में रहने वाले चालीस वर्षीय बर्नार्ड फ्रीज एक तरह से भारतीय संवेदना और जीवन-शैली के काफी नजदीक आते दिखाई देते हैं, खासकर तब जब वह अनुपयोगी चीजों का उपयोग करते हैं। पेंट के जम जाने से बनी पपड़ियों को कैनवास पर चिपकाकर एक अमूर्त कलाकृति को वह सजीव करते हैं। शायद आकृतियों और भूदृश्यों के परिचित-से कैनवास देखने के आदी लोगों को उनके अमूर्त पसंद न आए लेकिन अनुपयोगी चीजों को कला में बदल देने के दृष्टिकोण की कलात्मकता को यों ही खारिज नहीं किया जा सकता है। फ्रीज कैनवास के साथ अपने संबंधों को निरंतर बदलते, तोड़ते और बनाते रहते हैं। अमूर्तन से लेकर आकृतिमूलकता के बीच एक बहुत बड़ा कला परिदृश्य उनकी कला में दिखाई पड़ता है। वह मानते हैं कि हर कलाकृति का अपना व्यक्तित्व होता है इसलिए कलाकार के नाम से कलाकृति नहीं पहचानी जाए। कलाकृति की अपनी पहचान हो और वह अपने नाम से पुकारी जाए। इस सोच के पीछे कलाकार को विसर्जित

करने की मंशा है और कलाकृति को कलाकार की छाया से मुक्त करने की।

स्मृति और समय को बिंबित और जाग्रत करने वाली सामग्रियों का इस्तेमाल पास्कल कनवर्ट करते हैं। कलावस्तुओं की पारदर्शिता और दनकी परावर्तन क्षमता के इस्तेमाल में उनकी कला है। अनुपस्थिति की उपस्थिति को दर्शाने वाले माध्यम उनके प्रिय हैं। वह पालिश किए हुए पत्थरों पर टैक्सचर उभारते हैं जिस तरह मिट्टी-गोबर से लिखी गई चटाइयों पर टैक्सचर और मोटिफ होते हैं। उन पत्थरों को उन्होंने गैलरी के एक कमरे के भीतर दीवारों और फर्श पर इस तरह सजाया था मानो वे यादगार चीजें हों।

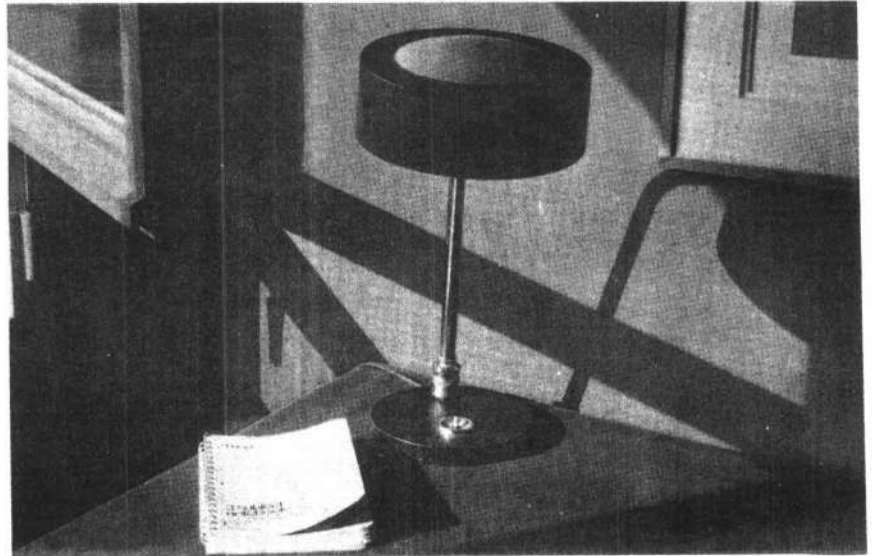
वरिष्ठ कलाकार सारकिस पेरिस में रहते हैं। दीर्घा के भीतर दृश्यचित्रण संयोजन के समय उनकी कोशिश यह रहती है कि जब दर्शक दीर्घा में प्रवेश करे तो वह कला के मर्म या रहस्य को समझे और स्पेस को जाने। छठे दशक के अंत तक आते-आते सारकिस ने 'इंस्टालेशन' बनाना और बिटुमिना, रबर जैसी अनुपयोगी वस्तुओं का इस्तेमाल शुरू किया था। साथ ही कला का इतिहास भी लिखने लगे थे। रंगमंच से भी जुड़े थे। सांगीतिक और दृश्यचित्रणात्मक संदर्भों के लिए भी वह विख्यात माने जाते हैं। रवींद्रनाथ टैगोर की चित्रकला से प्रेरणा पाने वाले सारकिस भारतीय शास्त्रीय संगीत के प्रेमी भी हैं।

गैलरी का एक बड़ा-सा हाल पूरा का पूरा सारकिस के इंस्टालेशन के लिए इस्तेमाल किया गया था। अलग-अलग दो स्टैंडों पर मोम से बने दो हाथी रखे गए थे। बीच में घूमते हुए एक स्टैंड पर एक और हाथी था जिसके ऊपर दो शेर उछल रहे थे। ऊपर से लाल और हरे रंग के जलते हुए बिजली के दो बल्ब लटक रहे थे। नक्काशीदार पलंग एक ओर रखा था। दीवारों पर उनके चित्र टंगे थे। शायद वे सारी कलावस्तुएं एक ही इंस्टालेशन के हिस्से थे जिनका रहस्य उतना आसान नहीं था जितना सारकिस ने समझा है। लेकिन उस हाल से गुजरना एक संपूर्ण अनुभव से गुजरने के बराबर था।

जिन पिचरे रेनां (56) के लिए संग्रहालय के प्रवेश द्वार के ऊपर के गोल गुंबद को टंगी कलाकृतियां उतारकर खाली कराया गया था जहां उन्होंने रंगीन स्टिकरों को चिपकाकर अपनी कलाकृति बनाई थी। इन स्टिकरों पर उन चीजों से सावधानी बरतने के संदेश थे जिनसे मौत हो जाने का खतरा है। स्टिकरों को चिपकाने का काम काफी परिश्रम का रहा होगा क्योंकि एक बड़ी जगह पर एक कतार में इतने

सारे स्टिकरों को चिपकाना था। यह मतीस को श्रद्धांजलि भी थी। इन चेतावनियों का प्रभाव असरदार नहीं हो रहा था क्योंकि दूर से देखने पर मौत की चेतावनी वाले स्टिकर आंतरिक सजावट का रूप ले चुके थे। दूर से उन पर लिखे संदेश नहीं पढ़े जा सकते थे। उनकी रंगीनी देखी जा सकती थी। उत्तर-आधुनिक काल में प्रवेश कर चुका आदमी हर चीज को आंतरिक सज्जा का हिस्सा बना लेना चाहता है। शायद रेनां का यही संदेश होगा। इस तरह का आधुनिक बोध भारत में भी फैलता जा रहा है। सातवें दशक के दौरान रेनां संग्रहालय, अजायबघरों और कलादीर्घाओं से बाहर निकलकर सार्वजनिक स्थानों पर पहुंच चुके थे क्योंकि उन्हें वहां काफी फैला और खुला स्थान मिल रहा था। रेनां मानते हैं कि ईजल कला की संभावनाएं चुक चुकी हैं इसलिए दूसरी संभावनाओं की तलाश निर्विकल्प हो गई है।

आंते मेसां उन दो फ्रांसीसी महिला कलाकारों में से एक हैं जिन्होंने फ्रांसीसी समकालीन कला प्रदर्शनी में शिरकत की। उनकी कला में स्त्रियोचित प्रवृत्तियां भी दिखाई देती हैं। लेकिन भारतीय स्त्रियोचित



जां बोद्रीयार की कृति

प्रवृत्तियों की असहायता को वह विचित्र नहीं करती हैं। पैरों पर एक पूरी दुनिया रचती हैं। छायाचित्रों पर चित्रकारी करके यथार्थ की ओर ध्यानाकर्षित करती हैं। चित्रकला के पारिवारिक रूपों से वह ऊबी हुई नहीं दिखाई पड़तीं। साधारण सामग्रियों के संयोजन और उस पर चित्रकारी से अलग किस्म की आध्यात्मिकता का सृजन करती हैं।

मार्क कौतूरिया (49) आध्यात्मिकता की अनवरत खोज में रहने वाले कलाकार हैं जिनके लिए जल और अग्नि महत्वपूर्ण वस्तुएं हैं। यमुना के किनारे एक पुरानी नाव तलाशकर उन्होंने संग्रहालय के एक कमरे में रखी थी और उसमें पानी भर दिया गया था। शायद यह कला को सजीव करने का भी प्रयास है। मार्क चाहते तो कैनवास पर उस दृश्य का अंकन कर सकते थे।

जिन बौद्धिया कला के सैद्धांतिक पक्ष को पुनर्परिभाषित करना चाहते हैं। व्यासय से वह समाजशास्त्री हैं और पेरिस विश्वविद्यालय में हैं और 20 से अधिक किताबें लिख चुके हैं, जिसमें राजनीतिक अर्थशास्त्र की विवेचना अधिक है। समाजशास्त्रीय और राजनीतिक-अर्थशास्त्रीय दृष्टिकोण के कारण ही उनका कला बोध थोड़ा-सा बोझिल और शुष्क दिखाई पड़ा। संदर्भित कला प्रदर्शनी में उनके छायाचित्र थे, जिनके बारे में उनका कहना है कि उनके छायाचित्रों को कला समझकर देखने की कोशिश बेकार है। उनका यह भी कहना था कि छायाचित्रों की स्थितियां बिल्कुल प्राकृतिक हैं, सप्रयास नहीं हैं, इसलिए उनमें अर्थ न ढूंढा जाए। लेकिन बिजली के खंभे से टिकी साइकिलें या टेबुल लैंप के नीचे पड़ी हुई किताब जैसी स्थितियां मात्र स्थितियां नहीं हो सकती हैं। ग्रीक मिथकों की तरह भारतीय समाज में भी मिथकों की एक लंबी परंपरा है जिसमें सार्थक अर्थ तलाशने की सहज चाह शामिल है। बौद्धिया के छायाचित्रों में बिंब या एक अर्थ ढूंढने की सहज इच्छा को संवार पाना आसान नहीं है। लेकिन यह बौद्धिया से असहमति जताना भी माना जाएगा। चित्रकला में काल्पनिकता की पूरी छूट होती है और देखे या भुगते या भोगे या समझे हुए यथार्थ को कोई भी रूप दे पाना संभव नहीं है, क्योंकि तूलिका कलाकार के हाथ में होती है और रंग-संयोजन कलाकार के मस्तिष्क में। लेकिन छायाचित्र में पूरी कोशिश के बावजूद यथार्थ उसी रूप में कैमरे में कैद होता है।

क्रिश्चियन बोल्तांसकी अपने 'इंस्टालेशनों' के निर्माण में छायाचित्रों का इस्तेमाल करते हैं। छायाचित्र अनाम होते हैं। 'इंस्टालेशनों' में मृत्युबोध भी रहता है। विडंबना और नकल, दुख और भावुकता, अच्छा और बुरा के अंतर्भेद को समझने वाली चीजों का निषेध करके एक अर्थ-संसार की रचना वह करते हैं।

भूदृश्यों की एक नई परिकल्पना पिअरे बुर्गालिओ की कला में दिखाई देती थी। कला के बाहर से कला के रूप में स्पेस का इस्तेमाल कलात्मकता की सीमा को तोड़ रहा था। शायद खाली कैनवास को मैनेज करना उनके लिए आसान नहीं रह गया था, लेकिन इस मुश्किल ने उन्हें साहसिकता प्रदान की थी जिससे कि उन्होंने गैर परंपरागत तरीके से भूदृश्यों की रचना की। फ़ैबरिस हाइबर्ट का मानना था कि कला माध्यमों को बरतने की स्वतंत्रता समकालीन कलाकारों की विशेषताएं थीं और शायद यही कारण था कि कला में गुरुवाद का वह मुंहतोड़ जवाब देते हैं। पेरिक सोरिन की जीवन-दृष्टि बिल्कुल अलग थी। उन्होंने जीवन की विडंबनाओं को जीवंत और गतिशील पुनरावृत्ति के माध्यम से टेलीविजन के परदे पर दिखाने की कोशिश की थी। एक ही क्रिया को बार-बार दोहराता दृश्य खौफ पैदा करता था और जीवन की व्यर्थता को भी दिखाता था। बीस टी.वी. सेटों के संयोजन से बना वह 'इंस्टालेशन' एशियाई विकासशील देशों के संदर्भ में महंगे सेटों की प्रासंगिकता पर प्रश्नचिह्न भी था। विद्युत आपूर्ति का अभाव

और महंगे दूरदर्शन सेट, एशियाई संदर्भ में यह सचमुच एक व्यंग्य जैसा लगा था।

शोर के बीच आसपास रखे बीस वीडियो स्क्रीनों के माध्यम से बेमतलब का काम करते हुए एक मनुष्य को दिखाना ऊब और लाचारी को दिखाना माना जाना चाहिए। क्या इसमें कलात्मकता और सृजनात्मकता की क्षणभंगुरता का भी संदेश होगा ही? परंपरा से अलग होने की प्रक्रिया में फ्रांस के कलाकार आधुनिक तकनालॉजी के मकड़जाल में उलझते जा रहे हैं। आधुनिक तकनालॉजी किस आक्रामकता के साथ कला में प्रवेश करती है, इस प्रदर्शनी में देखने लायक था।

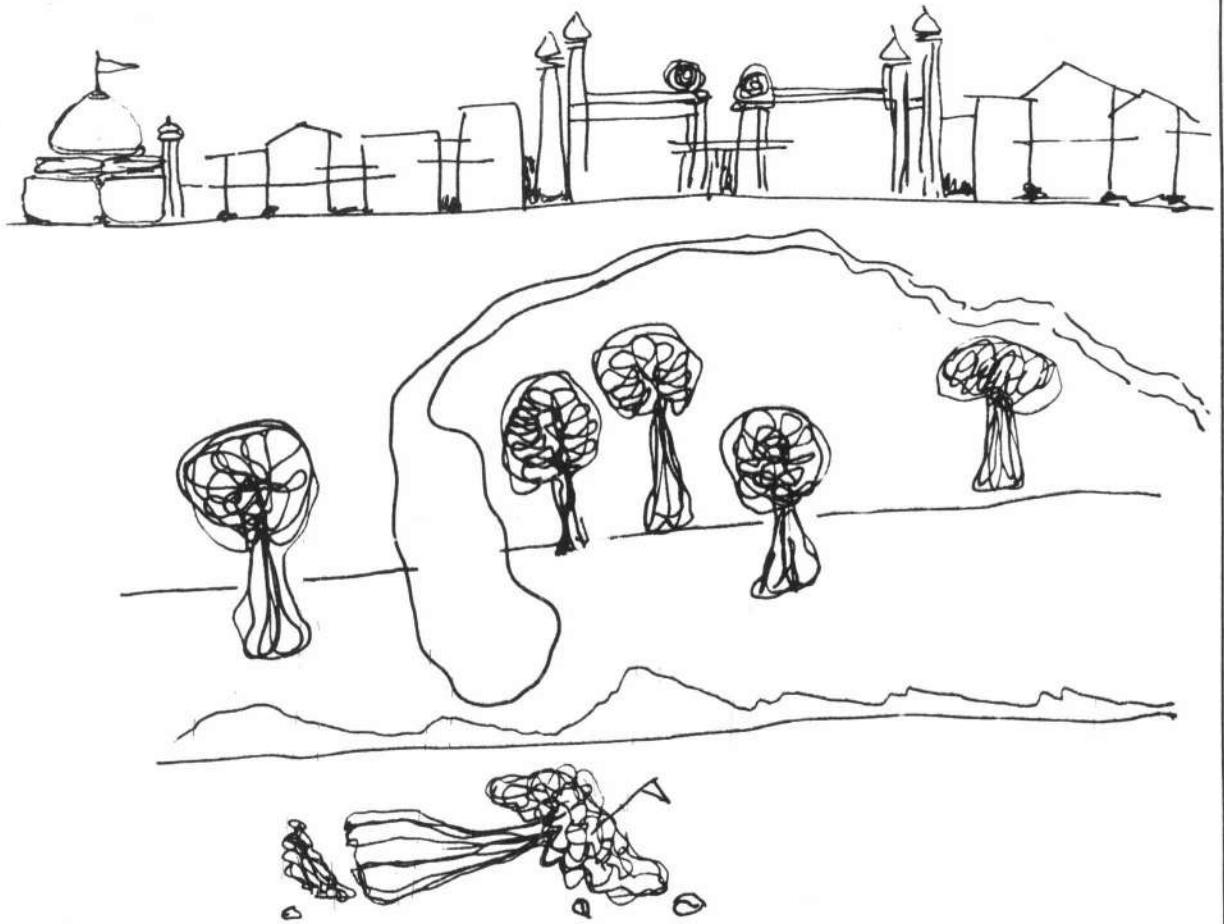
पैट्रिक फ़ैगबां फ्रांस के एक ऐसे कलाकार हैं जिनके परिवार को देशनिकाला मिला था और जिनके घरवालों ने बीमारी और मृत्यु का सामना किया था। पैट्रिक को काफी नजदीक से देखने का अवसर मिला था। उनके फोटोग्राफों पर इन सब बातों का असर होने की बात कही जाती है। उनके छायाचित्रों में इटली की राजशाही के आरामपरस्ती के साजो-सामान हैं। महलों की आंतरिक सज्जा में यूरोपीय परंपरा की कुछ कलाकृतियां भी दिखाई पड़ती थीं।

'प्रेम अगर लाल ड्रेस है तो मुझे गुदड़ों में खड़ा कर दो।'—यह थीम था, फ्रांकोस क्वाइन के 'इंस्टालेशनों' का। फ्रांकोस ने दिल्ली के बाजारों से सामान खरीदकर अपनी कलाकृतियों का निर्माण किया था। भारतीय संस्कृति के निकट आने की तमन्ना ही इन प्रयासों में दिखाई देती है। गैलरी के एक कमरे में छत से लटकते तीन 'इंस्टालेशन' थे जिन्हें लाल साटन को तहाकर और मोड़-मोड़कर और कृत्रिम बालों को लगाकर बनाया गया था। शायद यह एक महिला कलाकार की भारतीय सांस्कृतिक समझ की अभिव्यक्ति थी।

निस्संदेह यह प्रदर्शनी फ्रांसीसी उत्तर-आधुनिक प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व कर रही थी। अपेक्षाकृत नई पीढ़ी के युवा लेकिन फ्रांस में चर्चित कलाकारों में चित्रकला और मूर्तिशिल्प की परंपराओं और पारंपरिक कलाविधियों से मुक्ति पाने की जिद भी दिखाई देती है। उनमें से अधिकांश की यह घोषणा थी कि कैनवास पर चित्र बनाने की विधा की संभावनाएं खत्म हो चुकी हैं। संस्कृति पर लिखने वाले लेखक वाल्टर बेंजामिन के लेखन का प्रभाव उन सभी कलाकारों पर माना जाता है जो कि कलाकारों की व्यक्तिगत विशेषताओं को छोड़ कर उनके बीच एक सूत्र स्थापित करने में मददगार था।

भारतीय कमिश्नर अंजली इला मेनन का मानना है कि दीवार पर टंगी या स्टैंड पर रखी कलाकृतियों को कला मानने की भारतीय मानसिकता में बदलाव आएगा। देखना है कि अंजली की भविष्यवाणी कितनी सही निकलती है क्योंकि प्रौद्योगिकी की आक्रामकता को भारतीय मन सहजता से कबूल नहीं कर पाता है। 'इंस्टालेशन', 'मल्टी

पृष्ठ 59 पर जारी



रेखांकन : राजेंद्र गायकवाड़

जीप और कारों का पूरा काफिला सोई हुई घाटी की छाती से गुजर रहा था। सन्नाटे और अंधेरे को चीरकर बेतहाशा भागती उन गाड़ियों की तीखी घुरघुराहट से साल के झुटपुटे में सोए पक्षी उनींदी ही पंख फड़फड़ाने लगते। सड़क पार करते हुए कोई जानवर औचक ही सिर उठाकर गाड़ी की ओर देखता तो हैडलाइट में उसकी आंखें अंगारों-सी दहक उठतीं। मिर्जा बेग को यह सफर बेहद रूमानी लग रहा था। हवा में जंगल की भीनी-भीनी-सी गंध भरी थी।

“आसमान बिल्कुल साफ है।” मिर्जा बेग ने कहा, “ऐसा लगता है जैसे हम शिकार पर

पुल पर

तपन बनर्जी

निकले हों।”

जिला अग्रणी बैंक के वरिष्ठ अधिकारी मिर्जा बेग को चेयरमैन सिसोदिया ने कुछ विरक्ति से देखा। जीप और कारों के काफिले में उनकी जीप सबसे आगे थी। जीप का अधिकारी सिसोदिया था जबकि उसे मिर्जा बेग चला रहा था। ड्राइवर पीछे की सीट पर बैठा था। वे जिला विकास परिषद की बैठक निपटा कर जिला मुख्यालय से लौट रहे थे। चूंकि बैठक को संबोधित करने के लिए राज्य शासन का एक अदद मंत्री भी था, इसलिए उत्साही अधिकारियों की उपस्थिति कुछ ज्यादा ही थी। बैठक का अहम मसला था — गरीबी की रेखा के नीचे जिंदगी बसर करते लोगों का जीवन

स्तर कैसे ऊपर उठाया जाए! इस मसले पर मंत्री महोदय को चिंतित देख सभी अधिकारी बैठक की समाप्ति तक चिंतित होते रहे।

अभी रात के नौ बजे का वक्त था और सभी जिला मुख्यालय पहुंचने की जल्दी में थे। सर्किट हाउस में डिनर का इंतजाम इन्हें ही करना था। मऊगंज में थोड़ी देर के लिए इस काफिले को रुकना भी था। सिसोदिया अपने फूले और लटके गालों पर रूमाल फिराकर बोला, “जंगल का नजारा फिर कभी देख लेना। न हो तो एकाध बार शिकार का प्रोग्राम भी बना लेंगे। अभी तो भैया, स्पीड बढ़ाओ।”

मिर्जा बेग ने कहा, “गाड़ी अस्सी की स्पीड में है। एक तो डीजल इंजन, ऊपर से फाइबर हुड। इससे ज्यादा स्पीड में गाड़ी को जूड़ी ताप का असर हो जाएगा।”

सिसोदिया अफसोस से सामने देखने लगा। उसे ड्राइविंग नहीं आती थी। मिर्जा बेग ने उसे ढाढ़स बंधाया, “फिक्र न करें। हम लोग मंत्री जी से काफी आगे हैं।”

“आगे हैं तो क्या हुआ?” सिसोदिया मिर्जा बेग के इत्मीनान से चिढ़ गया, “मंत्री जी की कार सौ की स्पीड में होगी। कम से कम आधा घंटा पहले मऊगंज पहुंचना जरूरी है।”

“पहले पहुंचकर आपको करना ही क्या है? क्लब के मेंबरान सब इंतजाम कर चुके होंगे। मंत्री महोदय सद्भावना और भाईचारे पर भाषण देंगे और फिर सब लोग प्रेमपूर्वक नाश्ता करेंगे। इतने-से काम के लिए आप खामखाह बेचैन हो रहे हैं?”

मिर्जा बेग की बातें सिसोदिया को बहुत नागवार गुजरीं। जिस अंतर्राष्ट्रीय क्लब की स्थापना इकाई का वह अध्यक्ष था, मिर्जा बेग उसका सदस्य तक नहीं था। वह संजीदगी से बोला, “तुम नहीं समझोगे मिर्जा, कि सेवा का महत्व क्या है? परोपकार क्या है। दलित-शोषित लोगों से प्रेम कैसे किया जाता है। इसमें तुम्हारा दोष भी नहीं। दरअसल तुम जिस पृष्ठभूमि से हो वहां तलवार की भाषा ही समझ में आती

है। काश, तुम हमारे क्लब के मेंबर होते।”

मिर्जा बेग हंसने लगा, “तो क्या होता?”

“तुम सेवा का महत्व समझते इस तरह हंसते नहीं।” सहसा चौंककर सिसोदिया बोला, “स्पीडोमीटर साठ बता रहा है। कम से कम गाड़ी तो अस्सी में रखो।”

“आप सड़क नहीं देख रहे हैं, किस कदर टूटी-फूटी है। इस पर तो घोड़े भी नहीं दौड़ सकते।”

“स्पीड बढ़ाओ, प्लीज।”

मिर्जा बेग ने स्पीड बढ़ा दी। गाड़ी उछलती हुई भागने लगी। सिसोदिया संतुष्ट भाव से सामने देखने लगा। गाड़ी की तेज रोशनी से घबराकर सड़क पार करता एक खरगोश भागकर जंगल में गायब हो गया।

“चलो अच्छा हुआ”, सिसोदिया बोला, “क्लब के वार्षिक समारोह में हम एक मंत्री को शामिल कर रहे हैं। इससे अच्छी पब्लिसिटी मिल जाएगी।”

“गोकि आपका सेवा-भाव पब्लिसिटी का”

“नहीं नहीं,” सिसोदिया जल्दी से बोला, “पब्लिसिटी से मेरा सिर्फ इतना।” एक तेज झटके ने सिसोदिया की बोलती बंद कर दी। घाटी के बीच बहती नदी के पुल को पार कर गाड़ी रुक गई। एक घुमावदार मोड़ खत्म होते ही यह पुल शुरू होता था। ब्रेक की जकड़ से टायरों की चिचियाहट सन्नाटे को तोड़ गई।

“क्या हुआ?” सिसोदिया अभी भी सकते में थे।

“आपने कुछ नहीं देखा?”

“नहीं तो। तुमने क्या देखा?”

मिर्जा बेग कुछ पल पुल को घूरता रहा।

“क्या हुआ? तुमने क्या देखा?” सिसोदिया के स्वर में स्पष्ट घबराहट थी।

“मुझे ऐसा लगा, पुल पर कोई आदमी था। गाड़ी के पुल पर दाखिल होते ही वह नीचे

गिर पड़ा।”

“हे भगवान! तुमने एक्सीडेंट कर दिया।”

“मैं कुछ समझ नहीं पा रहा, पुल पर सचमुच कोई आदमी था या मेरा भ्रम है!”

“अजीब बात है। तुमने उस आदमी को जीप से कितनी दूरी पर देखा था?”

“दूरी का अंदाजा मुझे नहीं है। अगर सचमुच कोई आदमी था तो वह निश्चय ही नीचे गिरा होगा।”

ड्राइवर जीप से उतरकर सिसोदिया के पीछे खड़ा हो गया था और भयभीत आंखों से इधर-उधर देख रहा था। बहुत देर बाद उसका कंठ खुला, “साहब जी, यहां से चले चलिए। ये पुल भुतहा लगता है।”

पश्चिमी क्षितिज के ऊपर सातवें-आठवें दिन का चांद था। उसकी नामालूम-सी चांदनी में साल और सागौन के ऊंचे दरख्त भूत जैसे खड़े थे। सिसोदिया ने फटी-फटी आंखों से नदी के अंधेरे तल को देखा। पत्थरों के अनगिनत ढोकों पर से गुजरती नदी की आवाज सन्नाटे में स्पष्ट सुनाई दे रही थी।

“यार मिर्जा,” जीप के बोनट से टिकते हुए सिसोदिया बोला, “तुमने मुझे झमेले में डाल दिया।”

“आपको क्या होने लगा?”

सिसोदिया सिर हिलाने लगा, “भगवान बचाए। बेमतलब मुसीबत गले पड़ गई।”

मिर्जा बेग चिढ़कर बोला, “आप क्यों फंसने लगे मुसीबत में?”

सिसोदिया और ज्यादा चिढ़कर बोला, “और कौन फंसेगा? जीप हमारी है। ड्राइवर पीछे बैठा था। चला तुम रहे थे। जिसको अभी तुमने कुचला है, अगर वह मर गया होगा और बात पुलिस तक पहुंचेगी तो तुम तो साफ मुकर जाओगे कि जीप तुम चला रहे थे।”

“आप फिजूल डर रहे हैं। मैंने किसी को नहीं कुचला। हो सकता है कि सारा दृश्य ही मेरा वहम हो।”

ड्राइवर सिसोदिया की चिरौरी करते हुए बोला, “जीप में बैठिए और चले चलिए साहब। यह जगह अच्छी नहीं है। यहां तो झींगुरों की आवाज भी कितनी डरावनी है।”

सिसोदिया ड्राइवर से सहमत हो गया, “यार मिर्जा, तुम अगर सोचते हो कि तुमने एक्सीडेंट नहीं किया है और यह सब तुम्हारा वहम है तो एक पल भी गंवाए बिना बढ़ चलना ही हमारे हित में है।”

मिर्जा बेग जैसे हवा में कान बिछाए था। सिसोदिया के मुड़ते ही बोला, “आपको कुछ सुनाई दे रहा है?”

“मुझे केवल गीदड़ों की आवाज सुनाई दे रही है। आओ, जीप में बैठो।”

“एक मिनट। जरा ध्यान से सुनिए। नीचे से कराहने की आवाज आ रही है।”

सिसोदिया और ड्राइवर चौकन्ने होकर पुल की ओर देखने लगे। आवाज उन्हें भी सुनाई दी। सिसोदिया ने घबराकर कहा, “मॉय गॉड! तुमने सचमुच एक्सीडेंट किया है।”

ड्राइवर ने फुसफुसाकर कहा, “कुछ लोग इधर ही आ रहे हैं।”

नीम अंधेरे में काली सड़क पर चमरौंधे की आवाज गूंज रही थी। मिर्जा बेग ने आवाज देकर उन्हें रोका, “कौन हो तुम लोग?”

वे ठिठककर उन्हें देखने लगे। वे चार-पांच थे। एक बोला, “बजरिया। शिवपुर बाजार से फिर रहे हैं।”

“तुम लोगों का कोई साथी नीचे गिर पड़ा है। उसकी मदद करो।” वे सब नीचे देखने लगे। एक ने हांक लगाई, “कौन हवा रे।”

कोई उत्तर नहीं आया।

मिर्जा बेग उनके बीच आकर खड़ा हो गया, “नदी में पानी कितना है?”

“पानी तो नई है साहेब इक-दू बित्ता होगा, बाकी पत्थर ढेर हैं।”

मिर्जा के कहने पर वे सब फुर्ती से नीचे उतर गए। थोड़ी देर बाद जब ऊपर आए तो उनके कंधों पर एक आदमी लदा था। सड़क

के किनारे उसे लिटा दिया गया। मिर्जा ने गाड़ी की हेडलाइट जला दी। रोशनी होते ही सभी सिहर उठे।

सड़क पर लिटाया हुआ आदमी देहात का एक बूढ़ा था। कपड़े के नाम पर सिर्फ एक लंगोटी थी। कमर से नीचे का हिस्सा खून से लथपथ था। पीड़ा और भय से वह कांप रहा था।

सिसोदिया को यकीन हो गया कि वह जीप से कुचलकर नीचे गिरा है। उसके करीब जाकर बोला, “क्यों बूढ़े, क्या हुआ तेरे साथ?”

बूढ़े ने पीड़ा से सिहरते हुए कहा, “गिर पड़ेन।”

“कैसे गिरा?”

“गाड़ी के अंजोर में आंखी लुमाए गइस। कगरात रहेन तेकर गिर पड़ेन।”

“क्या कहता है यह?”

ड्राइवर बोला, “कहता है कि हेडलाइट से आंखें झपक गईं। किनारे हट रहा था तो गिर पड़ा।”

मिर्जा बेग ने नजर भरकर सिसोदिया को देखा, फिर बूढ़े से कहा, “तुम्हारा घर कहां है बाबा?”

“उरई डांड।”

बूढ़े को बाहर निकालने वाले मूकदर्शक की तरह वार्तालाप सुन रहे थे। एक ने कहा, “उरई डांड इहां से छे किलामीटर है।”

मिर्जा बेग ने सिसोदिया से कहा, “इसे सीतामढ़ी के अस्पताल पहुंचाना जरूरी है। खून अब भी बह रहा है। ऊपर से बूढ़ा है। ऐसे में ज्यादा देर नहीं टिक सकता।”

“सो तो है। मगर कहीं रास्ते में ही मर गया तो पुलिस हमें अदालत में घसीटने लगेगी।”

“तो फिर इसे ड्राइवर भेजकर गांव ही पहुंचवा दीजिए।”

सिसोदिया ने घड़ी देखी। व्यग्र होकर बोला, “बहुत देरी हो गई। इसे गांव तक पहुंचाने में भी दिक्कत है। आजकल नई लहर है। गांव वाले हमीं पर न पिल पड़ें!”

तभी रफ्तार से आती एक कार वहां रुकी। खिड़की का शीशा उतारकर एक सिर बाहर आया, “व्हाट हैपेंड?”

सिसोदिया कमर से झुकते हुए बोला, “नथिंग सर। एक देहाती नदी में गिर गया था। उसे हम ऊपर ले आए हैं।”

“व्हाट! सीरियस तो नहीं है?”

मिर्जा बेग ने बढ़कर कहा, “उसकी कमर टूट गई है। पांव का चूरा निकल गया है। उसे खून भी.....”

सिसोदिया ने बात काटकर कहा, “ऊपर से गिरा है तो थोड़ी-बहुत चोट तो लगेगी ही। सर, आपको मऊगंज में थोड़ा रुकना होगा। हमारे क्लब का वार्षिकोत्सव है।”

“मुझे मालूम है। मगर तुम लोग तो अभी यहीं अटके हो। जरा जल्दी करो। सिर अंदर हो गया। शीशा यथावत ऊपर चढ़ गया। घुरघुराकर गाड़ी झटके से आगे बढ़ गई।

कार के पीछे लगी गाड़ियां एक-एक कर आती गईं और पुल पार कर उसी रफ्तार से अंधेरे में विलीन होती गईं।

सिसोदिया गुस्से से मुट्ठियां भींचने लगा। उसने लगभग चीखते हुए ड्राइवर से कहा, “तुम चलाओ गाड़ी, हमें मंत्री के साथ ही मऊगंज पहुंचाना है। बैठो मिर्जा।”

“और यह बूढ़ा?”

“भाड़ में गया तुम्हारा बूढ़ा” सिसोदिया गुस्से से चिल्ला पड़ा, “वहां पता नहीं लोगों ने फोटोग्राफर बुक किया है या नहीं! माइक की व्यवस्था हुई या नहीं! अखबार वालों को बुलाया या नहीं तुमने मेरा सारा प्लान ही चौपट कर दिया। ड्राइवर, बढ़ाओ गाड़ी!”

मिर्जा बेग ने धूमिल पीली चांदनी में नंगी खुरदुरी सड़क पर खून में डूबे लंगोटीधारी बूढ़े पर आखिरी नजर डाली और सिर झुका लिया।

ढेर सारा कसैला धुआं छोड़कर जीप झटके से बढ़ गई। पुल दूर होता गया। □

अथातो ब्रह्म जिज्ञासा

आचार्य विनोबा भावे के व्यक्तित्व पर यदुनाथ थत्ते

सितंबर 11, सन् 1895 को महाराष्ट्र राज्य के रायगढ़ जिले के गागोदे गांव में विनायक नरहर भावे का जन्म हुआ था। अपनी आयु के दस वर्ष तक प्रकृति का उन्मुक्त सेवन करते हुए उन्होंने उसी परिसर में बिताए। इसके बाद वह अपने पिताजी के पास गुजरात के देशी राज्य बड़ोदरा गए। विनायक की मां उससे बार-बार कहती, “बेटा, गीता हिंदुओं का पवित्र ग्रंथ माना जाता है। मैं उसको पढ़ना चाहती हूँ, लेकिन



संस्कृत मैं नहीं जानती। इससे मैं और मेरे जैसी औरतें धर्मवंचित ही रह जाती हैं। इसके लिए कुछ तो करो।” विनायक के दिमाग में वह बात पक्की बैठ गई और फिर समय मिलते ही उन्होंने गीता का समश्लोकी मराठी अनुवाद किया। क्योंकि माता का स्मरण उस अनुवाद से जुड़ा था, उसको नाम दिया गीताई। मराठी में ‘आई’ शब्द मां के लिए उपयोग में लाया जाता है। विनायक की भावना ऐसी थी कि मां तो चल बसी लेकिन गीता माता की गोद देकर वह सदा के लिए विदा हो गई। ‘गीताई’ पर एक श्लोक विनोबा ने छपाया है —

गीताई माउसी माझी तिचा में बाढ़
पड़ता-रड़ता घेई उचलुनि कड़े बाही।

(गीताई मेरी मां है और मैं उसका अनजान बालक हूँ, जब मैं गिरता हूँ या रोता हूँ, वह मुझे अपनी गोद में बिठाकर आश्वस्त करती है।)

विनोबा की मां उन्हें बताती थी कि मैं महिला जन्मी हूँ वरना मैं ब्रह्मचर्य का एक आदर्श जरूर प्रस्तुत करती! विनोबा को विश्वास था कि वह ऐसा आदर्श जरूर प्रस्तुत करती। विनोबा को कई सुवचन उन्होंने पढ़ाए। वह कहतीं—“देता है वह देव है और रखता है वह राक्षस है।” ऐसे सुवचनों का संस्कार बचपन में ही विनायक पर पड़ा। विनोबा ने उस जमाने की शिक्षा पर गहरा विचार किया था। अंग्रेजी साम्राज्य दुनिया भर में फैला था, यहां तक कि पूरे घमंड से अंग्रेजी शासक कहते थे कि हमारे साम्राज्य पर सूरज कभी भी डूबता नहीं। अंग्रेजी शासन कोई बहुत अच्छा शासन तो था नहीं, लेकिन परीक्षा में अच्छे अंक प्राप्त करने हों तो उसका बखान करना पड़ता था। विनायक ने सोचा कि ऐसा क्यों करना चाहिए? झूठ से किसी को भी किसी तरह का लाभ नहीं मिल सकता। अंकों के लालच में आने से बेहतर उन्हें वह दरजा ही छोड़ देना अच्छा लगा। उस जमाने में सालाना परीक्षा के लिए छात्रों को मुंबई जाना पड़ता था। विनायक ने तय किया कि न मैं परीक्षा के लिए मुंबई जाऊंगा न अंक पाने के लालच से झूठ ही लिखूंगा। मुंबई जाने के बदले वह सूरत से वाराणसी चले गए। वहां एक कमरा किराए पर लेकर अध्ययन में डूब गए।

मदन मोहन मालवीय ने बनारस हिंदू विश्वविद्यालय स्थापित करने की पूरी तैयारी कर ली थी। देश के सभी नेताओं को निमंत्रित किया था। ऐनी बेसेंट अध्यक्षा कर रही थीं। श्रोताओं में हिंदू विश्वविद्यालय

के आश्रयदाओं का जमघट सज-धजकर, अलंकार पहनकर, बैठा था। ऐसी सभाओं में सारा काम लाभ के ख्याल से होता है। सभा को संबोधित करने वालों में मोहनदास करमचंद गांधी भी एक थे। सारी औपचारिकताओं को ताक पर रखकर उन्होंने भाषण दिया। कहा, “मेरे सामने सज-धजकर ये सारे राजा-महाराजा बैठे हैं : कितने अलंकार, कितने कीमती वस्त्र! लेकिन मुझे कहना चाहिए कि यह सारा वैभव पसीना बहाकर थोड़े ही उन्होंने प्राप्त किया है? यह एक तरह की चोरी ही है।” अध्यक्षता करने वाली ऐनी बेसेंट ने उनकी कमीज खींचकर इशारा किया कि यह बकवास बंद करूं। गांधीजी ने सभा के श्रोताओं से कहा, “अध्यक्ष पद पर विराजमान विदुषी महाशया डा. ऐनी बेसेंट संकेत दे रही हैं कि मैं अपनी बात बंद करूं। मैं श्रोताओं से पूछता हूं कि क्या मैं गलत बात सभा को बता रहा हूं? क्या मेरी बात झूठी है?” श्रोताओं ने कहा, “आपकी बात बिल्कुल सही है। आगे बढ़िए।” गांधीजी के भाषण को अखबारों ने खूब उछाला। कुछ अखबारों ने निर्भयतापूर्वक अपनी बात रखने के लिए गांधीजी को सराहा, तो कुछ अखबारों ने उन पर अशिष्टता का आरोप लगाया।

गांधीजी की बातों का विनायक नरहर भावे पर गहरा असर हुआ। उन्होंने बापू को चिट्ठी लिखी। बापू ने जवाब में लिखा, कब तक इस तरह चिट्ठियों का आदान-प्रदान करते रहेंगे? आप अहमदाबाद आइए, तब तफसील से बातें कर सकते हैं। विनायक नरहर भावे अहमदाबाद आए और आश्रम के कामों में घुलमिल गए। गांधीजी को आश्चर्य होता था कि यह दुबला व्यक्ति कितनी मेहनत करता है। एक दिन विनोबा को लेकर वह टहलने निकले और कहा, “ऐसा न मान लेना कि मैं तुम्हारा ख्याल नहीं करता हूं। दीखते हो इतने दुबले-पतले पर इतनी सारी मेहनत कैसे कर पाते हो?” विनायक ने कहा, “बापू, शक्ति शरीर की नहीं, आत्मा की होती है।”

गांधीजी को पता चला कि घर छोड़ते समय विनायक ने घर वालों को अपना ठिकाना नहीं बताया। बेचारे, लड़के की चिंता से न जाने कितना परेशान हो रहे होंगे! गांधीजी ने उनके पिताजी को चिट्ठी लिखी, “आपका विनोबा मेरे पास है। आप चिंता न करें।” गांधीजी ने विनोबा शब्द का उपयोग किया और जाने-अनजाने उनको महाराष्ट्र की संतमालिका में शामिल कर लिया। संत ज्ञानेश्वर जिन्होंने भागवत संप्रदाय की नींव रखी उनको ज्ञानोबा और संत तुकाराम को तुकोबा कहा जाता है। उसी मालिका में गांधीजी ने विनोबा को रखा और तब से ‘विनोबा’ नाम से ही दुनिया उनको पहचानने लगी।

गांंधीजी ने साबरमती आश्रम छोड़ा और वर्धा गए। वर्धा के परिसर में विनोबा तथा जमनालाल बजाज रहते थे। विनोबा ने ग्राम सेवा मंडल स्थापित कर जवानों की एक टोली रचनात्मक कामों में लगा दी थी। सत्याग्रही अनुशासन का विनोबा स्वयं एक बेमिसाल उदाहरण थे। गांधीजी के अंतःस्फुरणों को यथार्थ रूप देने का काम विनाबा और उनके साथी बड़ी मुस्तैदी से करते थे। लोकमान्य तिलक महाराज ने गीता को निष्काम कर्मयोग परक बताया है। गांधीजी ने गीता को

अनासक्ति योग परक बताया। विनोबा ने गीता को साम्य योग परक बताया है। गीता साम्य योग का संकेत करती है। उड़ीसा के जंगलों से गुजरते हुए विनोबा ने साम्यसूत्रों की रचना की। ‘सूचनात् सूत्र’ में ऐसे सूत्र की व्याख्या की गई है। विनोबा का पहला सूत्र है—अभिध्येवं परम साम्यम्। मानव जीवन का अभिध्येय यानी सर्वश्रेष्ठ ध्येय है, साम्य का निर्माण। परम साम्य में राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक आदि साध्य आ ही जाते हैं।

गीता का समश्लोकी मराठी रूपांतर विनोबा ने किया है, इसका जब धुले जेल के राजबंदियों को पता चला तो जाना कि विनोबा ने गीता का कितना गहरा और समग्र अध्ययन किया है। सत्याग्रही मित्रों का आग्रह था कि विनोबा हर रविवार को गीता पर प्रवचन दें। विनोबा ने सुझाव मानकर अठारह रविवार तक प्रवचन दिए। श्रोताओं में साने गुरु जी भी थे। उन्होंने वे प्रवचन अक्षरबद्ध किए। विनोबा की अनुमति से साने गुरु जी की पत्रिका में वे किस्तों में प्रकाशित हुए। आधुनिक काव्य की यही एकमात्र पुस्तक है कि जिसका सारी भारतीय भाषाओं में अनुवाद हुआ है और लाखों प्रतियां बिकी हैं। विनोबा गीता प्रवचनों को ‘साने स्मृति’ कहते थे।

‘अथातो ब्रह्म जिज्ञासा’ कहते हुए विनोबा ने गृहत्याग किया था। अपने परंधाम स्थित आश्रम को विनोबा ने ब्रह्मविद्या मंदिर का रूप दिया। विनोबा चाहते थे कि ब्रह्मविद्या मंदिर से ऐसी सक्षम महिला निकले जो शंकराचार्य का आसन ग्रहण कर सके।

ब्रह्म विद्या मंदिर ने एक बहुत बड़ा प्रकल्प विनोबा जन्म शताब्दी के वर्ष में पूरा करने का संकल्प किया है। 500 पृष्ठों के 20 खंडों में हिंदी में विनोबा साहित्य प्रकाशित किया जाएगा। कुछ खंडों का मूल्य तीन हजार रुपए आंका गया है — बीस खंडों में जो सामग्री प्रस्तुत होगी वह इस प्रकार है :

- खंड 1-2 : वेद-उपनिषद का दोहन, विवेचन।
- 3-4 गीता का सूक्ष्म चिंतन और सरस विवरण, प्रत्येक श्लोक का विवेचन।
- 5-6 मनुस्मृति, भागवत, विष्णु सहस्रनाम, शंकर साहित्य का दोहन, विवरण।
- 7-8-9 कुरआन, बाइबिल, धम्मपद आदि विविध धर्मग्रंथ और तुलसीदास आदि संतों के साहित्य का दोहन।
- 10-11 महाराष्ट्र के संत साहित्य का चयन, विवरण।
- 12 लेख, निबंध, प्रबंध आदि
- 13 पत्रों में से जीवन
- 14 आश्रम जीवन दिग्दर्शन
- 15-19 हजारों प्रवचन, चर्चाएं, बातचीत लेख आदि से चुना हुआ साहित्य।
- 20 आत्मकथनात्मक चरित्र, अनेक चित्रों सहित।

बीस खंडों में से पहले चार खंड प्रकाशित हो चुके हैं। ये बीस खंड एक तरह से भारतीय सांस्कृतिक संग्रह विश्वकोश ही कहे जा सकते हैं। □

अपने-अपने पिरामिड

विलास गुप्ते

मुकुंद भाई ने इस मकान को बहुत प्यार से बनवाया था। ठीक एक बच्चे की तरह पालन-पोषण किया है इसका। एक-एक घटना याद है उन्हें—कब नींव पड़ी ... कब छत तनी ... कब पूरा हुआ ... कब रहने आए। इस मकान ने कई तरह के अहसास जगाए हैं उनके मन में। यह मकान उनके लिए सतत संतोष का अटूट स्रोत रहा है। नखरैल परिचितों या संबंधियों के सामने यह रौबदार मुस्कान बनकर उभरा है। सभा-समाज में इसने इज्जत-अफजाई की भूमिका निभाई है। निश्चित भविष्य का गारंटी-कार्ड तो यह रहा ही है! मकान बनाते समय इतनी सारी बातें ध्यान में नहीं आई थीं। इसकी बहुमुखी उपलब्धियां बाद में क्रमशः मालूम पड़ने लगी थीं। पहले तो मात्र इतना सोचा था कि सिर छिपाने को एक जगह हो जाएगी।

इस मकान को बनाने के लिए क्या-क्या नहीं किया उन्होंने और कौन-कौन से कष्ट नहीं झेले? मुकुंद भाई की कोई बड़ी नौकरी तो थी नहीं। प्राविडेंट फंड से अधिकतम धनराशि निकालकर और बाकी इधर-उधर से उधार लेकर किसी तरह मकान बनवाया। मंजुला बेन ने भी कम मेहनत नहीं की। छोटे से छोटा काम भी अपनी उपस्थिति में कराया। यही वजह है कि इस मकान से एक अजीब तरह का लगाव हो गया है उन्हें। शुरू के कुछ महीने तो दोनों पागल-से रहे थे। मित्रों, संबंधियों, परिचितों—यहां तक कि अजनबियों तक को ला-लाकर अपना मकान दिखाते। अब तो मकान की



रेखांकन : राघवेंद्र तिवारी

तीमारदारी उनके जीवन का एक अंग बन गई है। दिन में एक न एक बार वह मकान का एक पूरा चक्कर अवश्य लगाते हैं, जैसे उसके दुख-दर्द की खोज-खबर ले रहे हों। कहां पलस्तर उखड़ गया है, कहां दरार पड़ रही है, कहां पानी रुक रहा है—वह जरा-सी तकलीफ भी नहीं देख सकते।

इस मकान में रहने आने की पहली रात को गद्गद स्वर में मुकुंद भाई ने मंजुला बेन से कहा था, “अब मुझे कुछ हो भी गया ना, तो तुम्हें चिंता करने जैसी कोई बात नहीं है। इस मकान के होते तुम्हें किसी के सामने हाथ नहीं फैलाना पड़ेगा!”

मंजुला बेन को पति का ऐसा बोलना बिल्कुल नहीं सुहाया था। लंबे समय के बाद उन्हें स्वतंत्र बेडरूम मिला था। वह बेहद रोमांटिक मूड में थीं—लेकिन पति ने मरण-चर्चा छेड़ दी! पति पर नाराज होते हुए उनकी आंखों से आंसू टपकने लगे थे। तब मुकुंद भाई ने जैसे पत्नी को दुनियादारी का पाठ सिखाते हुए कहा था, “बात को समझने को कोशिश करो। तुम्हें पता है, बड़ा इस मकान के बनने से खुश नहीं है!” फिर उन्होंने मंजुला बेन को पूरी बात बताई थी।

बड़े बेटे अरविंद की पढ़ाई में कोई खास रुचि नहीं थी। वह व्यापार करना चाहता था। बड़ा था भी चतुर-चालाक। बी.ए. करने के बाद नौकरी की प्रतीक्षा न करते हुए उसने थोड़ी-सी पूंजी से कटलरी की एक छोटी-सी दुकान खोल ली थी।

गुजारा हो जाता था, पर वह संतुष्ट नहीं था। अपनी अभिलाषा के पंख पसारने में सबसे बड़ी बाधा थी—पूंजी की तंगी। उसे जब पता चला कि पिताजी प्राविडेंट फंड से पैसे निकाल रहे हैं, तो वह खुशी से उछलकर उनसे मिलने जा पहुंचा। मुकुंद भाई ने उसे अपनी योजना बताई थी। उन्होंने सोचा था कि मकान की बात सुनकर बेटा गद्गद हो उठेगा—पर वैसा नहीं हुआ। उसने तर्क दिया कि किराए के मकान से काम चल ही रहा है, फिर मकान में पैसा क्यों अटकाया जाए? वह पैसा व्यापार में लगाया जा सकता है—मुनाफे की गारंटी के साथ। उनके टाल देने पर बेटे ने उधार के रूप में पैसा देने का प्रस्ताव रखा था। ब्याज तक देने की बात कही थी। पचास की उम्र का सफ़र कर चुके मुकुंद भाई ने जमाने के तजुबों को देखते हुए पूरी तरह से इंकार कर दिया था। हां, इतना जरूर कहा था कि मकान बनाने के बाद जो कुछ बचेगा, उसे दे देंगे। कहते हैं न कि गरीब का पेट भी बड़ा होता है, सो सारे पैसे जरा-से मकान की भूख मिटाने में ही खत्म हो गए थे। तब से बड़े बेटे का मन तड़क गया था। बहू के मन में भी मलाल आ गया। मुकुंद भाई ने मंजुला बेन को समझाते हुए कहा, “अगर व्यापार में घाटा आ जाए, तो? हाथ

के रुपये भी जाते और किसी से कुछ कह भी न पाते। देख, एक बार बेटा दगा दे सकता है, पर मकान नहीं।”

उसके बाद, मुकुंद भाई की आशंका के अनुरूप, बड़ा बेटा अधिक समय तक उनके साथ नहीं रह सका। व्यापार में भाग्य आजमाने वह राजस्थान चला गया था। ससुराल वालों ने उसे मदद करने का वादा किया था। वह दुकान-सामान तो बेच ही गया था, बीबी और बच्चे को भी अपने साथ ले गया था। तब से इस घर से उसका संबंध टूट-सा गया है। दो-तीन साल तक तो आया ही नहीं था। उसके बाद आने की शुरुआत तो की पर शाम को आता और सुबह चला जाता — या सुबह आता और शाम को चला जाता। उसकी पत्नी तो आई ही नहीं। जाते समय रुपये-पैसे की जरूरत के बारे में भी पूछता, पर मुकुंद भाई इंकार कर देते। वे जानते हैं कि बेटे का कारोबार अभी ठीक से जमा नहीं है। वैसे खास बात तो यह है कि उन्होंने कभी वैसी अपेक्षा ही नहीं की। उनकी नौकरी से, मकान की उधारी चुकाने के बाद भी इतना बच जाता है कि छोटे बेटे की पढ़ाई जारी रह सके। बड़े बेटे के परिवार के चले जाने से मंजुला बेन को मकान की ओर ध्यान देने का अधिक समय मिलने लगा था। पहले तो पोते की देखरेख में ही काफी समय निकल जाता था, बाद में तो इन-मीन-तीन लोगों का खाना बनता। बाकी मामलों में सब आत्मनिर्भर थे ही। इसलिए वह मकान-संबंधी कुछ न कुछ काम करती ही रहतीं — झाड़ू, पोंछा, सफाई, धुलाई। छुट्टी के दिन मुकुंद भाई भी उनका साथ देते। उन दोनों के जीवन का एक ही उद्देश्य बच रहा था — मकान की सेवा करना और छोटे बेटे को पढ़ने का अधिकतम अवसर देना। छांटे वाले की पढ़ने में बहुत रुचि थी। वह था भी प्रखर-बुद्धि। प्रथम श्रेणी से नीचे कभी नहीं उतरा। उसकी पढ़ाई का आखिरी साल बीतते-बीतते मुकुंद भाई रिटायर हो गए। चाहते भी यही थे कि रिटायरमेंट तक बेटा पढ़ाई पूरी कर ले और फिर नौकरी से लग जाए। पेंशन दो लोगों के लिए पूरी हो सकती थी, पर वह लाने के लिए बेटे का नौकरी करना जरूरी था।

रिटायरमेंट के बाद ग्रेजुटी और प्राविडेंट फंड की मिलने वाली राशि से मुकुंद भाई अपनी एक रुकी हुई इच्छा पूरी करना चाहते थे। वह चाहते थे कि ऊपर जैसे-तैसे डेढ़-दो कमरे बन जाएं — चाहे उसके लिए बाहर से कर्ज ही क्यों न लेना पड़े। किराए की आमदनी हो जाएगी, तो हाथ तंग नहीं रहेगा। इसीलिए वे बार-बार बेटे को नौकरी देखने के लिए कहने लगे। छोटे का मन अभी पढ़ाई से भरा नहीं था। हालांकि उसे अभी भी गुजारे लायक नौकरी मिल सकती थी, पर वह ऊंचे दर्जे की नौकरी चाहता था। कैरियर बनाने की जबर्दस्त महत्वाकांक्षा उसके मन में समाई हुई थी। वह नौकरी कर लेने को तो तैयार था, पर जब उसे पता चला कि पिताजी को रिटायर होने के बाद अच्छी-खासी रकम मिलने वाली है, तो उसका इरादा बदल गया। वह एक प्रतिष्ठित संस्था से ऊंची डिग्री लेना चाहता था। उसने मां के जरिए मुकुंद भाई तक यह बात पहुंचा दी थी। दो-तीन साल का तो सवाल है, उसके बाद तो भारी-भरकम तनखाह वाली नौकरी मिलेगी ही — वह सब घाटा पूरा कर देगा। मुकुंद भाई का गणित कुछ दूसरा था। जिस हिसाब से महंगाई बढ़ रही है, उस हिसाब से तो पेंशन से खर्च जैसे-तैसे ही चल पाएगा। बेटों की सहायता का मोहताज हो जाने से तो अच्छा है कि आमदनी का एक जरिया पुख्ता कर लिया जाए। मंजुला बेन का मत उनके मत से बिल्कुल मेल नहीं खाता था। बड़े बेटे की प्रतिक्रिया से वह भयभीत हो उठी थीं। भले ही उसने संबंध न तोड़ा हो, पर अब वह एक तरह से पराया ही हो चुका है। वह नहीं चाहती थीं कि वही पुनर्घटित हो, इसीलिए अपनी ओर से पूरा जोर लगाकर उन्होंने मुकुंद भाई को अपने मत से परावृत्त कर दिया था। बगावत के लिए उतारू होने के पहले ही छोटे बेटे को आगे पढ़ने के लिए भेज दिया था। दोनों ने अपनी खाहिशों पर लगाम लगा ली, जैसी कि पहले भी लगाते रहे थे।

उसके बाद कुछ साल तो फरटि से बीत गए। बेटे को मनचाही डिग्री मिल गई, अच्छी हैसियत की ससुराल भी। मुकुंद भाई और

मंजुला बेन को जीवन में सब कुछ मिल गया था। स्वाभिमान का अहसास कराती पेंशन, हैसियतदारों का दर्जा दिलाता मकान, अपनी-अपनी आजीविका से संतुष्ट बेटे, तीसरे लोक में पहुंच जाने पर प्रेत-योनि से मुक्ति दिलाने वाले पोते ... और क्या चाहिए? कमी थी तो एक—दोनों बेटे छूट गए थे। बड़ा बेटा तो छिटककर अलग हो ही गया था, छोटे वाला भी नौकरी के कारण बाहर की बाहर रहता था। उसने जो डिग्री हासिल की थी, उसके मान से इस शहर में नौकरी देने वाला कोई संस्थान नहीं था। जब ऊंचे दर्जे की नौकरी और भारी-भरकम तनखाह के अवसर मौजूद हों, तो इस छोटे से शहर में पड़े रहने का क्या आकर्षण हो सकता है? इसीलिए दोनों ने अपने को स्थितियों के अनुसार ढाल लिया है। पीछे वाले खुले हिस्से की फर्शियां निकालकर वहां खाद-मिट्टी डाल दी गई है। दोनों फुर्सत के वक्त छोटे-से बगीचे की देखभाल करते हैं।

अब यह मकान उनके लिए जिंदगी जीने का एक जरिया बन गया है। उन्होंने अपने को पूरी तरह मकान के लिए समर्पित कर दिया है। अधिक मजबूरियों के कारण वे अपने बच्चों की बहुत-सी इच्छाएं पूरी नहीं कर सके थे। उसी तरह मकान को लेकर भी बहुत-सी हसरतें थीं उनके मन में। उस समय वे कुछ नहीं कर सके थे। क्या-क्या नहीं करना पड़ता मकान को खुश रखने के लिए? ऑइल डिस्टेंपर से लेकर मार्बल टाइलों तक ... खिड़कियों-दरवाजों पर वार्निश से लेकर काले पत्थर के किचन स्टैंड तक ... गीजर से लेकर कूलर तक ... कभी न खत्म होने वाली इच्छाओं का अंतहीन सिलसिला! अब उन्होंने रख-रखाव के साथ-साथ सजावट पर भी ध्यान देना शुरू कर दिया है। पिछले कमरे में अलग से दरवाजा निकालकर उसे किराए पर उठा दिया गया है। गर्मी की छुट्टियों के अलावा वहां एक-दो छात्र बने ही रहते हैं। बड़े बेटे का कारोबार बढ़िया जम गया है, छोटा तो शुरू से ही हजारां में खेलता रहा। जब भी कोई बेटा आता है, कुछ न कुछ दे ही जाता है, हालांकि वे कभी चाह नहीं रखते।

इन पैसों से धीरे-धीरे मकान में सभी चीजें आ गई हैं। आवश्यकताएं तो कब की पूरी हो गई थीं, अब तो सुविधाओं के दौर से गुजरते हुए ऐशो-आराम का दायरा शुरू हो रहा था। सभी कमरों में पंखे लग गए हैं, कूलर-हीटर लग गए हैं, मच्छर-रोधक जालियां लग गई हैं, रंगीन टी.वी. आ गया है — और भी बहुत कुछ। परिचित मित्र या संबंधी हवाला दे-देकर कहते हैं कि मुकुंद भाई और मंजुला बेन जैसा सुखी जीवन केवल नसीब वालों को ही मिलता है।

ऐसा नहीं है कि बेटों ने उन्हें एकदम निराधार छोड़ दिया है। दोनों चाहते हैं कि वे उनके साथ रहें; पर साथ ही दोनों चाहते हैं कि वे उस मकान को बेच दें। बड़ा अपने व्यापार वाले स्थान पर मकान बनवाना चाहता है और छोटा अहमबाद में फ्लैट लेना चाहता है। मुकुंद भाई मकान को बेचने की कल्पना मात्र से भयभीत हो जाते हैं। मंजुला बेन भी पूरी तरह उनके साथ हैं। दोनों जानते हैं कि बेटे मकान बेचने के पीछे क्यों पड़े हैं। मकान वे हरगिज नहीं बेचेंगे। अपने दोनों बेटों के घर वे हो आए हैं। आठ-आठ, दस-दस दिनों तक रहे हैं। बाहर से तो कुछ नहीं लगता, पर भीतर से कहीं लगता है कि वे बेटों के घर मेहमान भर हैं — और मेहमानों को जरूरत से ज्यादा रुकना नहीं चाहिए। आए, हंसी-खुशी से दो-चार दिन रहे और चल दिए। जब थोड़े-से दिनों के बाद ही रुझान का रंग फीका पड़ने लगे, तो लंबे समय तक बने रहने की कल्पना करना भी बेमतलब है। कहीं ऐसा न हो कि घर के रहें, न घाट के। सब कुछ बेच-बाचकर चले जाएं और बहुओं-बेटों से न पटे, तो वापसी का कोई गस्ता भी न मिलेगा। अभी इतना तो है कि बिना किसी टोकाटाकी के जी लेते हैं। अरुचि और अनिच्छा के पीक के छंटि दुग्ध न फेंकते हों, पर उबकाई तो पैदा करते ही हैं। वेधर हाने के भय से निर्जन होने का भय कम डरावना होता है।

मुकुंद भाई और मंजुला बेन जीवन के इस अंतिम चरण में नए सिरे से जीने की तैयारी कर रहे हैं। घर के सब कामकाज नौकरानी

कर जाती है। ऊपर के काम पीछे रहने वाले विद्यार्थी कर देते हैं। अनुभवों ने दोनों को इतना समझदार बना दिया है कि वे लड़कों के साथ कभी मकान मालिक जैसा व्यवहार नहीं करते। उस उम्र के अपने बेटों की छवि याद कर वैसा ही व्यवहार करते हैं। खान-पान से लेकर पढ़ाई तक की पूछताछ। बीमारी या मजबूरी में ये लड़के ही काम आते हैं — या काम वाली बाई। बेटे तो खबर मिलने पर अपने हिसाब से आते हैं और दिन-दो दिन रुककर चले जाते हैं। बाकी दिनों तो ये ही देखभाल करते हैं — मन से या बेमन से। इसीलिए मुकुंद भाई और मंजुला बेन इन्हें सब तरह से खुश रखते हैं।

अब तब दोनों के पास समय ही समय है, इसीलिए मकान की, किसी समाधि की तरह देखभाल करते हैं। जितना हो सकता है, खुद करते हैं, बाकी दूसरों से करवा लेते हैं। जीवन जीने का आधार बस यह मकान ही है। इसके अलावा और कुछ नहीं बचा है—प्रेरणा या कर्तव्य के बतौर। सुबह उठने से लेकर रात को सोने तक मकान ही मकान। दिल में मकान... दिमाग में मकान। सुबह का समय जरूरी कामकाज निपटाने में निकल जाता है। दोपहर को थोड़ी-बहुत नींद हो जाती है। शाम को टी.वी. देख लेते हैं या वहीं के वहीं टहल लेते हैं। बस, रात का समय काटने दोड़ता है। आसपास का खालीपन जैसे उनके भीतर भी समा जाता है। सब लोग अपने-अपने घरों में परिवार के साथ मग्न रहते हैं। लड़के अपने कमरों में पढ़ाई में डूबे रहते हैं। बचे रहते हैं मुकुंद भाई और मंजुला बेन। साझेपन का एकांत दोते हुए। तमाम तरह की सुविधाओं से युक्त मकान होने के बावजूद बेसहारा। लगता है कि टी.वी., वी.सी. आर., पुस्तकें — ये सब चहल-पहल का झूठा अहसास दिलाने वाले ऐंद्रजालिक करतब हैं। वनवास का अहसास तो मिटकर भी नहीं मिटता।

भांय-भांय करते अपने उस खुद से भी अधिक प्रिय मकान में एक-दूसरे के पास लेटे हुए मुकुंद भाई और मंजुला बेन ऐसे प्रतीत होते हैं, जैसे किसी पिरामिड में दो ममियां लेटी हों! □

यह जो आकाश है

देवेंद्र मेवाड़ी

इन दिनों अगर आप आकाश दर्शन करें तो आपको रात के करीब आठ-नौ बजे मध्याकाश की ओर बढ़ता 'सिंह' दिखाई देगा। मुंह खोले आकाश में बैठा हुआ सिंह। तारों की लकीरों से बना है यह सिंह। मघा (रेगुलस या अल्फा लियोनिस्), उत्तरा फाल्गुनी (देनब या देनेबोला), पूर्वा फाल्गुनी (डेल्टा लियोनिस्) आदि तारों या नक्षत्रों ने आकाश में सिंह की आकृति बना दी है। अगले हिस्से में मघा और पांच अन्य तारे—इटा, गामा, जीटा, म्यू और इप्सिलान एक हंसिए या दरांती जैसी आकृति बनाते हैं जो सिंह के मुंह, गर्दन और वक्ष को दर्शाते हैं। तीन तारे—उत्तरा फाल्गुनी, पूर्वा फाल्गुनी और धीटा समकोण त्रिभुज के रूप में सिंह की पूंछ बनाते हैं। पूर्वा फाल्गुनी नक्षत्र सिंह के पुट्टे पर है।

तारों के जंगल में 'सिंह' को खोजने का एक और तरीका भी है। सप्तर्षि के सामने दो तारों को जोड़ने वाली सीधी रेखा को दक्षिण की ओर बढ़ाएं तो वह सिंह के मध्य भाग में पहुंचती हैं। लेकिन सप्तर्षि कौन? उत्तरी आकाश में विचरता बड़ा भालू।

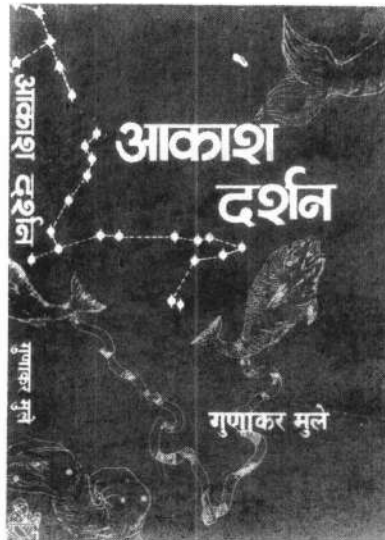
सुप्रसिद्ध विज्ञान लेखक गुणाकर मुले लिखित *आकाश दर्शन* ग्रंथ को पढ़ते हुए हमें आकाश जीवंत होता हुआ लगता है और उसमें राजा, राजकुमारियां, शिकारी व्याध, श्वान, सिंह, भालू, शशक, मगर, बिच्छू, केंकड़ा, सांप, घोड़ा, मेढ़ा, कौवा, हंस आदि तमाम जीव विचरने लगते हैं। हम अपने पूर्वजों की दृष्टि से आकाश दर्शन करते हुए पौराणिक आख्यानों के जीवों को आकाश में विचरते हुए देखते हैं और बेबीलोन, रोम आदि देशों से भारतीय ज्योतिर्विज्ञान के साथ खगोल के इतिहास की यात्रा करते हैं। अपनी इस ज्योतिर्विज्ञानी यात्रा में तारों से बनी उन तमाम जीवों की आकृतियों को पहचानते हुए उनके वैज्ञानिक रहस्यों से रू-बरू

होते हैं और सहसा वह जीवंत आकाश हमारे लिए सितारों भरे रहस्यमय आकाश में तब्दील हो जाता है।

इस तरह *आकाश दर्शन* हमें युगों के दौर से गुजरते हुए किसी काल यात्री की तरह आकाश दर्शन और प्राचीनकाल से आज तक आकाश के बारे में बदलती आदमी की दृष्टि से परिचित कराती है। आख्यानों से वैज्ञानिक व्याख्याओं तक की यात्रा है *आकाश दर्शन*।

आकाश का बारहमासा प्रस्तुत करने से पहले लेखक ने तारों भरे आकाश, आकाशगंगा, नक्षत्रों व राशियों का परिचय दिया है। उनका कहना है, आदिमानव ने कुतूहलवश आकाश के तारों की गति-स्थिति का अध्ययन शुरू कर दिया था और आदि समाजों ने आकाश के तारा-समूहों में तरह-तरह की आकृतियों की कल्पना की, उनके बारे में कथाएं गढ़ीं और उन्हें नाम दिए। सूर्य, चंद्रमा और ग्रह जिस मार्ग से आकाश में यात्रा करते दिखाई देते हैं वह 'राशिचक्र' (जोडियक) कहलाता है। तारों के सापेक्ष-चंद्रमा एक चक्कर 27 और एक तिहाई दिन में लगाता है, इसलिए रवि मार्ग या चंद्रपथ को 27 भागों में बांटा गया। प्राचीन ज्योतिष में चंद्रपथ या रवि मार्ग के इन 27 समान भागों को 'नक्षत्र' कहा गया। कभी-कभी नक्षत्र-संख्या 28 भी मानी गई।

हमारे वैदिक साहित्य में 27 नक्षत्रों का वर्णन किया गया है। चित्रा, स्वाति, अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, रोहिणी, विशाखा आदि नक्षत्र हैं। नक्षत्रों के बारे में प्राचीन भारतीय साहित्य में कई कथाएं मिलती हैं, लेकिन वैदिक साहित्य, वेदांग, ज्योतिष और यहां तक कि महाभारत में भी बारह राशि नामों का कोई उल्लेख नहीं है। इसलिए क्योंकि राशियों का मूल प्राचीन बेबीलोन ज्योतिष में है। यूनानियों ने राशियों को अपनाया और इनके बारे में कथाएं गढ़ीं। भारतीयों ने राशियों को बहुत बाद में अपनाया।



तैत्तिरीय ब्राह्मण में 27 और **अथर्व संहिता** में 28 नक्षत्रों का वर्णन किया गया है। ऋग्वेद में अघा (मघा) अर्जुनी जैसे नक्षत्रों का उल्लेख हुआ है। वैदिक काल में प्रथम नक्षत्र 'कृत्तिका' था। कृत्तिकाएं तब वसंत-विषुव बिंदु के समीप रही होंगी और इसी बिंदु से वर्ष आरंभ होता था। महाभारत काल में प्रथम नक्षत्र 'श्रवण' हो गया। सूर्य सिद्धांत के प्रचलन और प्रसिद्धि के कारण लगभग 500 ई. से भारतीय ज्योतिषी मीन राशि के 'रेवती' नक्षत्र से नक्षत्रारंभ मानते आ रहे हैं। ऐसा क्यों? इसलिए क्योंकि पिछले करीब 1,700 वर्षों में अयन चलन के कारण क्रांतिवृत्त पर वसंत-विषुव बिंदु लगभग 24 अंश पीछे सरक गया है। चीनी और अरबी ज्योतिष में 28 नक्षत्रों का प्रचलन रहा है। राशि नामों और फलित ज्योतिष का आगमन भारत में संभवतः सोल्यूकी साम्राज्य के दौरान और बाद में शकों के साथ हुआ। वराहमिहिर (ईसा की छठी सदी) और आर्यभट (जन्म 476 ई.) को यूनानी ज्योतिष का अच्छा ज्ञान था।

नक्षत्रों और राशियों के साथ ही आकाशगंगा की वैज्ञानिक व्याख्या की गई है। यह आकाश में उत्तर से दक्षिण तक फैली हुई तारों की चमकीला पट्टी जैसी दिखाई देती है। इसमें 100 अरब से भी अधिक तारे हैं और हमारा सूर्य भी इसी का एक तारा है। आकाशगंगा इतनी बड़ी है कि एक सेकेंड में करीब तीन लाख किलोमीटर दूरी तय करने वाला प्रकाश एक लाख वर्ष में इसके एक सिरे से दूसरे सिरे तक पहुंचता है। एक वर्ष में प्रकाश इस वेग से जितनी दूरी तय करता है, उसे 'एक प्रकाश वर्ष' कहते हैं। आकाशगंगा की मोटाई 20,000 प्रकाश वर्ष है। इसकी द्रव्य राशि करीब 200 अरब सूर्यों के बराबर है जो नीहारिका (नेबुला) कहलाते हैं। अपनी कोरी आंखों से हम आकाश में अधिक से अधिक 6,000 तारे देख सकते हैं। सूर्य के बाद सबसे निकट का तारा 'प्रोक्सिमा सेंटोरी' है। वह हमसे 4.3 प्रकाश वर्ष दूर है। खगोल वैज्ञानिकों ने आकाश को कुल 88 तारामंडलों में बांटा है। तारामंडलों की यह सूची अनेक सभ्यताओं के सदियों के प्रयासों का परिणाम है। आकाशगंगा में कई प्रकार के तारे हैं। कुछ तारे हमारे सूर्य से सैकड़ों गुना बड़े हैं। वे 'महादानव' तारे कहलाते हैं। ज्येष्ठा (एंटासेस) और आर्द्रा (बेतुलगूज) सूर्य से 300 गुना बड़े हैं। कई तारे सूर्य से भी छोटे हैं। वे 'बौने तारे' या 'श्वेत वामन तारे' कहलाते हैं।

आकाश का बारहमासा जनवरी माह में 'वृषभ' (टारस) राशि के प्रमुख नक्षत्रों से शुरू किया गया है। वृषभ तारामंडल की कल्पना प्राचीन सभ्यताओं ने बैल या सांड के रूप में की। इस सांड के मस्तक पर रोहिणी का लाल तारा है। गर्दन पर कृत्तिका तारापुंज और दाएं सींग की नोक पर अग्नि (बीटा टोरी) तारा है। लगभग 4000 ई. पू. से 1,700 ई.पू. तक वसंत विषुव बिंदु इसी तारामंडल में रहा। इसलिए प्राचीन सभ्यताओं ने इसी तारामंडल से वर्षारंभ माना। यूनानी आख्यान में ज्युपिटर सफेद सांड का रूप धरकर फिनीशिया

के राजा की पुत्री यूरोपा के पास गया। यूरोपा उस पर सवार हो गई और वह उड़कर क्रीट द्वीप पहुंचा। वहां ज्युपिटर ने अपना दैवी रूप दिखाया। हमारे **ऐतरेय ब्राह्मण** के अनुसार प्रजापति ने अपनी ही कन्या रोहिणी की कामना की और मृग का रूप धरकर आकाश में उसका पीछा किया। व्याध (सिरियस तारा) ने उसे वाण (मृग तारामंडल का त्रिकांड) मारा। रोहिणी पश्चिम में अल्देबरान (अरबी में अल-दबरान अर्थात् पीछा करने वाला) कहलाता है। रोहिणी हमसे 70 प्रकाश वर्ष दूर और सूर्य से 30 गुना बड़ा तारा है। इसके आसपास 'हायडेस' तारा गुच्छ है जिसमें करीब 200 तारे हैं। वृषभ मंडल के जीटा तारे के समीप 'कर्क नीहारिका' (क्रेब नेबुला) है। 'कृत्तिका' (प्लीएडस) नक्षत्र को सात बहनें माना गया है। पौराणिक काल में इन्हें सात ऋषि पत्नियां भी कहा गया। यूनान में इन्हें एटलस और प्लीओने की पुत्रियां माना गया। कृत्तिका हमसे 400 प्रकाश वर्ष दूर है। इसके तारे श्वेत दानव है। कृत्तिका नक्षत्र से कार्तिक माह बना। जनवरी माह में उत्तरी खगोल में चमकदार तारा ब्रह्म हृदय (कैपेला) भी दिखाई देता है जो जुड़वां तारा है।

फरवरी माह में शाम छह बजे के लगभग मिथुन (जेमिनी) राशि या तारामंडल के तारे मध्याकाश में आ जाते हैं। सुपरिचित मृग तारामंडल (ओरायन) स्पष्ट दिखाई देता है। अगर मृग मंडल के चमकीले 'राइगेल' और 'आर्द्रा' (बेतुलगूज) तारों को मिलाते हुए सीधी रेखा खींचें तो आर्द्रा से आगे वह 'कैस्टर' तारे से जाकर मिलती है। उसके पास ही 'पुनर्वसु' (पोलक्स) तारा है। कैस्टर और पोलक्स मिथुन तारामंडल के तारे हैं। कैस्टर जुड़वां तारा है। मिथुन मंडल के इटा तारे के पास 1781 में हर्शेल ने यूरेनस ग्रह की खोज की थी। प्लूटो ग्रह की खोज भी 1930 में इसी मंडल में हुई थी। त्रिकांड के दक्षिण पूर्व में आकाश का सबसे चमकीला तारा 'व्याध' या 'लुब्धक' (सिरियस) है। मिस्र के ज्योतिषी इसे देखकर नील नदी में बाढ़ का अनुमान लगाते थे। व्याध तारा नौ प्रकाश वर्ष दूर है।

मार्च माह में कर्क मंडल (कैंसर) के तारे या नक्षत्र दिखाई देते हैं लेकिन वे अधिक चमकीले नहीं हैं। इसके दक्षिण में लघु श्वान और सर्प (हाइड्रा) तारामंडल हैं। 'पुष्य' और 'आश्लेषा' कर्क मंडल के मुख्य नक्षत्र हैं। पुष्य नक्षत्र से पौष माह का नाम पड़ा। मार्च में दक्षिण के आकाश में दूसरा सबसे चमकीला नक्षत्र 'अगस्त्य' (कैनोपस) दिखाई देता है। यह हमसे करीब 180 प्रकाश वर्ष की दूरी पर है। यह सूर्य से 1,900 गुना अधिक चमकीला है।

सिंह (लियो) अप्रैल माह की प्रमुख राशि या तारामंडल है। मघा और फाल्गुनी इसके मुख्य नक्षत्र हैं। इन दिनों सप्तर्षि (उरसा मेजर) भी आकाश में साफ दिखाई देता है। प्राचीन मिस्र के निवासी सिंह राशि के तारों की पूजा करते थे। कहा जाता है कि मिस्र का विश्वप्रसिद्ध

स्क्रिक्स आकाश के सिंह और निकट की कन्या राशि की कन्या के सिर का प्रतिनिधित्व करते हैं। सिंह राशि को आग और ताप का प्रतीक माना जाता है। वैदिक काल में सूर्य जब इस नक्षत्र में पहुंचता था तो धान और अन्य फसलें कटाई के लिए तैयार हो जाती थीं यानी धन बन जाती थीं। मघा का अर्थ धन है। आकाश के सबसे देदीप्यमान 20 तारों में मघा का स्थान बीसवां है। यह हमसे 85 प्रकाश वर्ष दूर है। सिंह राशि उल्कावृष्टि की दृष्टि से भी प्रसिद्ध है। इसकी गर्दन के पास जीटा तारे के निकट हर 33 या 34 साल बाद नवंबर मध्य में उल्काओं की बौछार दिखाई देती है। पिछली बार 1965 में उल्का वृष्टि हुई थी।

मई माह में कन्या (विर्गो) तारामंडल को देखा जा सकता है। चित्रा (स्पाइका), उत्तरा फाल्गुनी (देनेब) और हस्त (गामा या डेल्टा कोर्वी) इसके प्रमुख तारे हैं। चित्रा नक्षत्र के आधार पर वर्ष के प्रथम माह को चैत्र नाम दिया गया। बेबीलोन और यूनान में भी इस मंडल को कन्या ही माना गया। मैसेपोटामिया में इसे देवी ईस्टर, मिस्र में गेहूं की बाली धारण करने वाली देवी आइसिस, यूनान में न्याय की देवी एस्ट्रा, फारस में अनाज की बाली 'खोशा' और चीन में गेहूं की बाली थामे और नाव पर बैठी स्त्री के रूप में देखा गया। चित्रा हमसे 160 प्रकाश वर्ष दूर और सूर्य से 600 गुना अधिक तप्त है। कर्क, सिंह और कन्या तारामंडलों के दक्षिण में 'महासर्प' (हाइड्रा) नामक लंबा तारामंडल है। इसके निकट ही हस्त नक्षत्र है। सितंबर-अक्टूबर में सूर्य जब हस्त नक्षत्र में पहुंचता है तब जो वर्षा होती है उसे किसान हथिया (हस्त) की वर्षा कहते हैं। धान के लिए यह वर्षा अच्छी मानी जाती है। दक्षिण आकाश में इन दिनों सेंटोरस तारामंडल झलकता है। हमारा निकटस्थ तारा 'प्रोक्सिमा सेंटोरी' इसी में स्थित है। इसके दक्षिण में 'दक्षिण क्रास' या त्रिशंकु है।

जून माह में आकाश में तुला (लिब्र) राशि को देख सकते हैं। जब सूर्य विषुव बिंदुओं (रवि मार्ग विषुव वृत्त को जिन दो बिंदुओं पर काटता है) पर रहता है तो दिन-रात समान होते हैं। ये बिंदु हैं वसंत-विषुव और शरद-विषुव। सूर्य 21 मार्च को वसंत-विषुव और 22 सितंबर को शरद-विषुव पर पहुंचता है। ढाई हजार वर्ष पहले जब सूर्य शरद-विषुव बिंदु पर पहुंचता था तो दिन-रात समान होते थे और इस 'तुला' यानि समान दिन-रात वाली राशि या मंडल को तुला राशि कहा गया। विशाखा (तीन चौथाई), चित्रा (आधा) और स्वाति (पूर्ण) इस मंडल के मुख्य नक्षत्र हैं। स्वाति एक महत्वपूर्ण नक्षत्र माना गया है। यों, स्वाति 'बोतीज' तारामंडल (भूतेष) में है जो आकाश में उड़ती पतंग-सा दिखाई देता है। उत्तरी खगोल में इन दिनों कालिय (डेको) तारामंडल को भी देखा जा सकता है।

एक बेहद खूबसूरत तारामंडल है 'वृश्चिक' (स्कोरपियस) जो जुलाई माह के आकाश को सुशोभित करता है। अनुराधा (डेल्टा स्कोपी) और ज्येष्ठा (एंटारेस) इसके मुख्य नक्षत्र हैं। प्राचीन में वृश्चिक के नक्षत्रों

को अशुभ माना जाता था और उन्हें कलह व युद्ध का जनक कहा गया। ज्येष्ठा लाल रंग का तारा है। अरब निवासी इसे 'कल्ब अल अकरब' (बिच्छू का हृदय) और चीन वासी 'ता हू' (महाग्नि) कहते थे। यह महादानव तारा है और सूर्य से करीब 400 गुना बड़ा है। हमसे यह 173 प्रकाश वर्ष दूर है। वृश्चिक मंडल में अनेक तारागुच्छ हैं। इस मंडल में नवतारे (नोवा) पैदा होते रहे हैं। उत्तरी आकाश में अभिजित (वेगा) और स्वाति (आर्कटुरस) नक्षत्र के बीच हर्क्यूलीज तारामंडल है। हर्क्यूलीज के दक्षिण और वृश्चिक के उत्तर में 'सर्प' तारामंडल है।

एक और सुंदर तारामंडल है धनु (सेजिटेरियस) जो अगस्त माह के आकाश में साफ देखा सकता है। पूर्वाषाढ़ा (डेल्टा सेजिटेरी) और उत्तराषाढ़ा इसके मुख्य नक्षत्र हैं। अथर्व संहिता में प्रार्थना की गई है: पूर्वाषाढ़ा मुझे अन्न दे, उत्तराषाढ़ा मुझे तेज दे। धनु तारामंडल में भी अनेक तारागुच्छ हैं जिनमें खगोल वैज्ञानिकों ने काफी दिलचस्पी दिखाई है। जब हम धनु की ओर देखते हैं तो आकाश के केंद्र की ओर देख रहे होते हैं।

सितंबर माह में मकर (कैप्रिकोर्नस) राशि के तारे देख सकते हैं। अभिजित (वेगा) तारे से धीमी रेखा खींचकर श्रवण (अल्तेर) के छोटे त्रिकांड से दक्षिण की ओर बढ़ाएं तो मकर मंडल के चमकीले अल्फा व बीटा तारों पर पहुंचती है। श्रवण (अल्तेर) और धनिष्ठा (अल्फा डेल्फिनी) मकर के मुख्य नक्षत्र हैं। प्राचीन यूनान में इस मंडल को देवताओं का द्वार माना जाता था। वैज्ञानिक दृष्टि से 'श्रवण' गरुड़ (एक्विला) मंडल और धनिष्ठा डालफिन तारामंडल में स्थित है। इन दिनों 'हंसा' (सिग्नस) मंडल के तारों को भी पहचाना जा सकता है। इस मंडल को उत्तरी क्रास भी कहते हैं। देनेब इस मंडल का मुख्य तारा है जो हमसे 650 प्रकाश वर्ष की दूरी पर स्थित है। इसमें 6000 सूर्यों के बराबर ताप है।

अक्टूबर माह में कुंभ (एक्वेरियस) राशि के तारों को देखा जा सकता है। इसमें धनिष्ठा (आधे) शतभिषक (पूर्ण) और पूर्व भाद्रपद (तीन चौथाई) नक्षत्र हैं। कुंभ मंडल का संबंध वर्षा से रहा है। जब सूर्य कुंभ राशि में पहुंचता तो खूब वर्षा होती थी। पश्चिम में इस मंडल को कुंभधर के रूप में देखा गया है। शतभिषक नक्षत्र का पश्चिमी नाम लांबडा है। इस माह भाद्रपद के नक्षत्रों को एक चतुर्भुज चौकी के रूप में देखा जा सकता है। यह चौकी 'महाश्व' या 'हयशिर' (पेगासस) तारामंडल में है। इस मंडल का उल्लेख तालेयी ने पंखों वाले अश्व के रूप में किया है। उत्तरी खगोल में सेफियस मंडल दिखाई देता है। इसे रात 9-10 बजे लघु सप्तर्षि, हंस और शर्मिष्ठा (कैसियोपिया) मंडलों के बीच पहचाना जा सकता है। शर्मिष्ठा का आकार 'W' की तरह होता है।

नवंबर में मीन (पिसीज) राशि के अस्पष्ट तारे आकाश में उभरते हैं। प्राचीन सभ्यताओं ने इस मंडल को दो मछलियों की आकृति के रूप में पहचाना है। इसका प्रमुख नक्षत्र रेवती (जेटा पिसीयम) है। इस

मंडल की एक मछली का मुंह पश्चिम और दूसरी का उत्तर की ओर है। उत्तर दिशा की मछली के उत्तर में देवयानी (एंड्रोमेडा) मंडल का चमकीला बीटा तारा है। जीटा तारे को रेवती का योग तारा माना जाता है। वर्तमान समय में वसंत-विषुव बिंदु मीन में है लेकिन लगभग 2,600 ई. में यह कुंभ में प्रवेश कर जाएगा। अथर्व संहिता में रेवती और अश्विनी नक्षत्रों से सौभाग्य की प्रार्थना की गई है। मीन मंडल के दक्षिण में 'तिमिंगल' या सेतस तारामंडल है। देवयानी मंडल में भी 100 अरब से अधिक तारे हैं इसलिए उसे देवयानी मंडाकिनी (एंड्रोमेडा गैलेक्सी) माना जाता है। यह हमारी निकटस्थ मंडाकिनी है।

आकाश में मेष राशि (एरिडज) का दर्शन दिसंबर माह में कर सकते हैं। अश्विनी और भरणी इसके मुख्य नक्षत्र हैं। यह अपेक्षाकृत छोटा मंडल है और इसमें 5-6 प्रमुख तारे हैं। अल्फा, बीटा, गामा तारे एक समूह बनाते हैं। अल्फा तारे का अरबी नाम हमल अर्थात् मेढ़ा है। बीटा तारा आदि नक्षत्र अश्विनी का योगतारा है। इसके पूर्वोत्तर में भरणी तारा है। अल्फा तारे के निकट एम-33 नामक मंडाकिनी को दूरबीन से देखा जा सकता है। आकाश का सबसे लंबा तारामंडल है—वैतरणी (एरिदानस)। इसे नदी के रूप में देखा गया है। मृग मंडल के चमकीले 'राइगेल' तारे के पास से शुरू होकर यह तारों की नदी पश्चिम, दक्षिण-पूर्व और फिर दक्षिण-पश्चिम की ओर मुड़ जाती है। मध्य व दक्षिण भारत से समूचे वैतरणी मंडल को देखा जा सकता है। इसका सबसे चमकीला तारा है—नदीमुख (आखरनार) जो हमसे 70 प्रकाश-वर्ष दूर है। खगोल वैज्ञानिक इस तारा मंडल के 'इप्सिलोन' तारे के रेडियो संदेश को रेडियो दूरबीनों से पकड़ने का प्रयास कर रहे हैं। यह तारा हमसे 10 प्रकाश वर्ष दूर और हमारे सूर्य जैसा ही है। अनुमान है कि इसके चारों ओर ग्रह मंडल होना चाहिए। संभव है, वहां जीवन भी हो। वैतरणी के पूर्व में शशक (लेपुस) और उसके दक्षिण में कपोत (कोलंबा) तारामंडल हैं। इस माह रात नौ बजे के लगभग सिर के ऊपर आकाश में 'ययाति' (पर्स्यूस) तारामंडल है जिसका 'अलगूल' तारा कभी तेज और कभी कम चमकता है। यह ग्रहणकारी चरकाति तारा है।

ब्रह्मांड के रहस्यों की जानकारी पृथक प्रकरणों के रूप में दी गई है। श्वेत तथा लाल वामन तारों, महाब्रह्मांड के अनंत विश्वों, अयन चलन, तारों की दूरी, वेग, उनके जन्म, यौवन और विनाश, न्यूट्रान और पल्सर तारों, क्वासरो, ब्रह्मांड की अदृश्य गुफाओं (ब्लैक होल) और उसके आदि-अंत तथा ब्रह्मांड में जीवन की संभावनाओं पर लेखक ने महत्वपूर्ण वैज्ञानिक जानकारी दी है। इसके लिए प्राचीनकाल से अब तक की उपलब्धियों का उल्लेख किया गया है। वेदों से लेकर आर्यभट्ट, वराहमिहिर, ब्रह्मगुप्त, कौटिल्य, अरिस्टार्कस, अल्बेरूनी, अल-सूफी, अलखवारिज्मी, उलूगबेग, इराटोस्थनीज, कोपर्निकस, गैलीलियो, केपलर और आज तक के प्रमुख खगोल वैज्ञानिकों के उल्लेखनीय कार्य के संदर्भ दिए गए हैं। इस ग्रंथ में भारतीय खगोल विज्ञान के विविध पहलुओं पर भी समुचित प्रकाश डाला गया है। आर्यभट्ट ने सबसे पहले कहा था कि पृथ्वी अपनी धुरी घूमती है। उसने ग्रहणों के सही कारण

भी बताए। वराहमिहिर, ब्रह्मगुप्त और भास्कराचार्य के ज्योतिष ग्रंथों के बारे में बताया गया है। सवाई जयसिंह ने जयपुर, दिल्ली, मथुरा, वाराणसी और उज्जैन में वेधशालाओं का निर्माण किया। मद्रास की वेधशाला की स्थापना 1792 में हुई। लेखक ने ऐसे अनेक अल्पज्ञात तथ्यों को भी उजागर किया है जिनका ऐतिहासिक महत्व है। जैसे फ्रांसीसी खगोलविद फादर जे. रिचार्ड ने 1689 ई. में पांडिचेरी आकर अपनी दूरबीन से 'अल्फा सेंटोरी' तारे का अध्ययन करके पहली बार पता लगाया कि वह जुड़वां तारा है। भारत भूमि पर दूरबीन का शायद वह पहला प्रयोग था। तुजुक-ए-जहांगीरी में जहांगीर (शासन काल 1605-27) कहता है—'मुझे सूझा कि महीने के नाम के स्थान पर उस महीने के राशिचिन्ह को सिक्के पर अंकित कर दिया जाए। ऐसा पहले किसी ने नहीं किया। यह मेरी खोज है।'

परिशिष्टों के अंतर्गत खगोल विज्ञान की विकास यात्रा, तारामंडल सूची, राशिनाम, सर्वाधिक चमकीले तारों के नाम, राशियों के साथ भारतीय नक्षत्रों, खगोल विज्ञान के आंकड़ों के साथ ही सहायक ग्रंथों की सूची और शब्दावली, नाम तथा विषय अनुक्रमणिका भी दी गई है जिससे पुस्तक की उपयोगिता बढ़ी है। विषय को सुंदर रेखाचित्रों से समझाया गया है।

आकाश दर्शन को पढ़ना, और पढ़ते रहना तारों भरे आकाश के रहस्यों का एक निरंतर अहसास है। यह अकथ, अटूट श्रम और स्वाध्याय की परिणति है। हिंदी में ऐसे श्रमसाध्य और प्रामाणिक प्रयास के सुंदर प्रकाशन के लिए प्रकाशक भी बधाई का पात्र है। □

आकाश दर्शन : गुणाकर मुले, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली-110002; पृ.सं. 376; मूल्य : 300 रुपये।

‘आजकल’ की विज्ञापन दरें

	अनियत	चार या अधिक निवेशन के लिए
	रुपये	रुपये
पूर्ण पृष्ठ	1000-00	800-00
अर्ध पृष्ठ	600-00	450-00
विशेष कवर पोजीशन		
अंतिम आवरण	2000-00	1800-00
दूसरा आवरण	1500-00	1300-00
तीसरा आवरण	1200-00	1000-00

रंगीन अधिभार : प्रत्येक रंग के लिए 33 1/3 प्रतिशत अतिरिक्त (केवल चार रंगों तक सीमित)

विस्तृत जानकारी के लिए संपर्क करें :

विज्ञापन व्यवस्थापक

प्रकाशन विभाग,

ईस्ट ब्लॉक-4, लेवल-5, रामकृष्णपुरम,

सेक्टर-1, नई दिल्ली-110066

विपर्यय और धर्मनिरपेक्ष संस्कृति

अरुण कुमार त्रिपाठी

संघ परिवार के अयोध्या आंदोलन का सबसे गहरा प्रभाव हिंदी भाषी क्षेत्रों पर पड़ा और स्वाभाविक रूप से सबसे तीखी प्रतिक्रिया भी यहीं होनी थी। इसलिए इस दौर की पत्र-पत्रिकाओं में धर्म, राजनीति, दर्शन, भारतीय परंपरा, इस्लाम, धर्मनिरपेक्षता, सांप्रदायिकता और पुनरुत्थान जैसे विषयों पर लेखों की भरमार है। अगली सदी में अगर कोई उन्हें पलटकर देखेगा, तो लगेगा कि हिंदी भाषी क्षेत्रों में विचारशीलता फूट पड़ी थी। सांप्रदायिकता से भारतीय राष्ट्र-राज्य और धर्मनिरपेक्ष संस्कृति को हुई भारी क्षति की भरपाई होना आसान तो नहीं है लेकिन हिंदी समाज में जितनी तेजी से आत्ममंथन की प्रक्रिया शुरू हुई थी, उसे एक सकारात्मक परिघटना कहा जा सकता है। उसे देखकर लगा कि हिंदी भाषी क्षेत्र में अवरुद्ध नवजागरण के अंकुर फूटने लगे हैं। हालांकि उसे फिर अवरुद्ध होने में ज्यादा समय नहीं लगा।

हिंदी क्षेत्र की विचारशीलता को तरंगित करने की एक कोशिश बंग क्षेत्र से भी हुई है। शंभुनाथ की *ईश्वर और धर्मनिरपेक्ष संस्कृति* हिंदी क्षेत्र की थकती चेतना को फिर से झकझोरने का सार्थक प्रयास है। हालांकि यह पुस्तक दस लेखों का संग्रह है पर विषय के प्रतिपादन, पांडित्यपूर्ण शैली और विचारशीलता की वजह से वह उसे एक साथ गूँथने में काफी हद तक सफल रहे हैं।

दस में से चार लेख भारत की प्राचीन परंपरा, दर्शन और सांस्कृतिक आत्म संघर्ष को तलाशने के प्रयास हैं। जाहिर-सी बात है कि बीसवीं सदी के बुद्धिजीवी के लिए यह प्रयास अतीत के घने और दुर्गम जंगलों से गुजरने से कम नहीं है। लेकिन शंभुनाथ प्राचीन भारतीय दर्शन और परंपरा की यह यात्रा न तो किसी पूर्वाग्रह के साथ करते हैं और न ही भयभीत होकर। वह इस यात्रा का पूरा आनंद लेते हैं और बाहर किसी भटके और थके राहगीर की तरह नहीं बल्कि तरोताजा यात्री की तरह निकलते हैं। मार्क्सवादी पृष्ठभूमि से जुड़े शंभुनाथ भारतीय दर्शन परंपरा में भौतिकवाद की पराजय के लिए छाती पीटने और कोसने की बजाय आदर्शवादी परंपरा में सकारात्मक तत्वों की तरफ संकेत करते हैं।

* *ईश्वर और धर्मनिरपेक्ष संस्कृति* : शंभुनाथ; आधार प्रकाशन, पंचकुला, हरियाणा; पृष्ठ संख्या : 200; मूल्य : 100 रुपए

पुस्तक का एक लेख मध्य युग यानी भक्तिकाल और अन्य चार लेख आधुनिक साहित्य तथा समाज से संबंधित हैं। 'नवजागरण और विपर्यय' वाला लेख इस पुस्तक का सर्वाधिक महत्वपूर्ण लेख है। दो लेखों में हिंदी साहित्य की दो रचनाओं के माध्यम से युगीन प्रवृत्तियों को समझने की कोशिश है। लेकिन *शेखर : एक जीवनी* और *सद्गति* के बहाने सामाजिक प्रवृत्तियों के विश्लेषण का प्रयास पुस्तक के दार्शनिक प्रवाह में खटकता है। हालांकि लेखक ने इस संग्रह की भूमिका में ही कह दिया है, 'अब सद्बुद्धि आ जानी चाहिए कि वर्तमान राजनैतिक संकट का एक प्रमुख आधार हमारे समाज के सांस्कृतिक हास में है। संस्कृति और साहित्य की उपेक्षा में है।' शायद इसीलिए वह अपने विश्लेषण में साहित्य संबंधी आलोचनाओं को सायास शामिल करते हैं।

लेकिन लेखक अपनी इस प्रतिस्थापना से पुस्तक के अंतिम लेख 'धर्मनिरपेक्ष संस्कृति का राष्ट्रीय दुर्ग' में उस समय हटता हुआ दिखाई पड़ता है जब वह कहता है, 'इस दशक के सांप्रदायिक उन्माद की जड़ों को नवजागरण और राष्ट्रीय आंदोलन की विचारधारा से जुड़े साहित्य में ढूँढना खामख्याली में रहना है।' शंभुनाथ साहित्य और समाज के किसी नायक को खंडित नहीं होने देना चाहते। वह उनसे इतने कृतज्ञ लगते हैं कि उन्हें उनमें किसी तरह की नकारात्मक प्रवृत्ति दिखाई ही नहीं देती। इसलिए वह कृष्ण कुमार के 'हिंदी, हिंदू और हिंदुस्तान' लेख में रामचंद्र शुक्ल पर लगाए गए आरोपों का खंडन करते हैं और नामवर सिंह द्वारा परंपराओं की खेमेबंदी का विरोध करते हुए परंपरा की समग्र समीक्षा की जरूरत महसूस करते हैं।

पर भारतीय परंपरा में धर्मनिरपेक्ष संस्कृति की समन्वयवादी परंपरा की तलाश करते हुए वह इस बात की उपेक्षा कर जाते हैं कि दूरस्थ अतीत में सीधे नहीं जाया जा सकता, उसके लिए भी निकटस्थ अतीत से गुजरना पड़ेगा। और कभी-कभी तो दूरस्थ अतीत की सारी छाया निकटस्थ अतीत में मिल जाती है और जो दिखाई नहीं पड़ती, उसका वर्तमान में हस्तक्षेप नगण्य होता है। इसी सिलसिले में राष्ट्रीय मुक्ति संग्राम और नवजागरण वह जमीन है जिसकी मृदा, जलवायु और पारिस्थितिकी की विधिवत जांच किए बिना उसमें पैदा हुई फसल और

खरपतवार को अलग कर पाना संभव नहीं होगा। नवजागरण और राष्ट्रीय मुक्ति संग्राम वह उर्वर जमीन है जहां आधुनिक भारतीय राष्ट्र-राज्य और समतावादी और धर्मनिरपेक्ष समाज के अंकुर फूटें हैं तो सांप्रदायिकता और जातिवाद के रोग भी लगे हैं। आधुनिक भारत के इतिहास की दो प्रमुख धाराएं और उपलब्धियां रही हैं—एक राजनैतिक उपनिवेशवाद के विरुद्ध संघर्ष की, दूसरी सामाजिक उपनिवेशवाद के विरुद्ध संघर्ष की। इन्हीं दो संघर्षों ने आधुनिक भारत की राजनैतिक और सांस्कृतिक चेतना को आकार दिया है। इन्हीं दो संघर्षों के दायरे में भारत की नई सामाजिक और राजनैतिक व्यवस्था के आदर्श तथा उन्हें प्राप्त करने के उपाय सन्निहित हैं। कुछ चिंतकों ने अंग्रेजों की गुलामी को अभिशाप मानने की बजाय वरदान माना और उनके अपेक्षाकृत ज्यादा समरूपी समाज के आदर्शों से प्रेरित होकर अपने समाज की विकृतियों और विषमताओं को दूर करने का प्रयास किया। इस श्रेणी में बंगाल नवजागरण के अग्रपुरुष राजा राममोहन राय से लेकर दलित संघर्ष और चेतना के प्रतीक पुरुष भीमराव आंबेडकर तक को रखा जा सकता है। हालांकि सामाजिक विकृति और विषमता के प्रति उनके स्वर और उसे दूर करने के तरीके में समय के अनुरूप भारी अंतर आया है, फिर भी वे दोनों अंग्रेजी शासन की काफी प्रशंसा करते हैं। यही नहीं, वे दोनों मुस्लिम शासकों के प्रति भी समान रूप से कटु रहे हैं। बंगाल नवजागरण से निकली, अपने-अपने संप्रदाय को सुधारने पर जोर देने वाली इस धारा के साथ बंकिम का हिंदू राष्ट्रवाद और प्रतिक्रिया में उसी तर्ज पर इकबाल का इस्लामी राष्ट्रवाद का दर्शन भी निकलता है।

कहने का तात्पर्य है कि नवजागरण में धर्मनिरपेक्ष संस्कृति ही नहीं, सांप्रदायिकता के बीज भी छिपे हैं। भक्तिकालीन युग में सांप्रदायिक एकता की जितनी गहरी भावभूमि तैयार होती है, नवजागरण उसमें बौद्धिक फसल उगाने की बजाय उसे सुखाकर उसमें दरार डाल देता है।

चूंकि शंभुनाथ सांप्रदायिकता के स्रोत नहीं, धर्मनिरपेक्ष संस्कृति की तलाश कर रहे हैं, इसलिए उनके लिए यह बहुत स्वाभाविक है कि वह नवजागरण काल की सकारात्मक प्रवृत्तियों की पहचान कर उन्हें स्पष्ट करें। विषय की प्रतिज्ञा उन्हें नकारात्मक प्रवृत्तियों की ज्यादा चीर फाड़ की अनुमति नहीं देती। नवजागरणीय व्यक्तित्व के सामान्य गुणों—सादगी, स्वाध्याय, आत्मनिर्भरता, सामाजिकता, निर्भीकता, विवेकपरकता, दिमागी खुलापन, वैचारिक सहिष्णुता इत्यादि पर जोर देना निश्चित रूप से प्रासंगिक है। हम अपने पूर्ववर्ती महापुरुषों के ऋणी हैं, इसलिए उच्छेदवादियों की तरह उनके प्रति कृतघ्न होना उचित भी नहीं है। लेकिन किसी युग का भक्ति-भाव से विवेचन करने की प्रवृत्ति हमें एक भ्रमित स्थिति के अलावा कहीं और नहीं ले जाएगी। जिसमें हम भाव-विभोर तो रह सकते हैं पर इतिहास से विवेकपूर्ण मार्ग नहीं निकाल सकते। यहां तक कि भक्तिकाल में भी खंडन-मंडन की प्रवृत्ति कम नहीं है। चूंकि शंभुनाथ आज के युग को विपर्यय का युग बताते हैं और इसे कोसने में कोई कसर नहीं छोड़ते, इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि उन्होंने इस संग्रह में नकारात्मक प्रवृत्तियों की तरफ

संकेत न करने की प्रतिज्ञा कर रखी है।

हमारे राजनैतिक और सांस्कृतिक चिंतन को आकार देने वाली दूसरी धारा साम्राज्यवाद विरोधी संघर्ष की रही है। इस राष्ट्रवादी धारा का असली जोर भारत को स्वतंत्र और संप्रभु राष्ट्र बनाने पर रहा है। इसका मानना रहा है कि एक बार भारत स्वतंत्र हो जाए तो सांप्रदायिकता और जातिवाद की समस्याएं विकास के साथ अपने आप हल कर ली जाएंगी। यह इन समस्याओं को आर्थिक पिछड़ेपन के रूप में देखती रही है और अपने समाज में आई विकृति के लिए बाहरी हस्तक्षेप को ज्यादा जिम्मेदार ठहराती है। इस प्रक्रिया में यह धारा आपसी फूट डालने और टकराव पैदा करने वाले किसी मुद्दे को उठाने से बचती रही। यह हमारे आधुनिक भारत की सबसे प्रभावी धारा रही है। धीरे-धीरे इस धारा को भी अहसास हुआ कि सांप्रदायिक और जातिवादी सोच को बदले बिना आजादी का कोई मतलब नहीं होगा। लेकिन तब तक बहुत देर हो चुकी थी और सांप्रदायिकता की जड़ें गहरे पैठ चुकी थीं, जिसका खामियाजा विभाजन के रूप में चुकाना पड़ा। लेकिन इस विभाजन के बावजूद सांप्रदायिकता का अंत नहीं हुआ। आज सांप्रदायिकता बिल्कुल नए रूप में हमारे सामने है और इसकी चरम परिणति अयोध्या में बावरी मस्जिद का तोड़ा जाना है।

आज हमारे सामने बहुसंख्यक सांप्रदायिकता का खतरा है। 1984 के बाद उसने कई तरह से अपनी जमीन तलाशने की कोशिश की। इंदिरा गांधी की हत्या के बाद उसने सिख उग्रवाद के विरोध में अपने को अभिव्यक्त किया। लेकिन सिख विरोधी हिंदू सांप्रदायिकता की जड़ें इतिहास में गहरी नहीं थीं। वह ज्यादा-से-ज्यादा आर्य समाजी आंदोलन से खुराक ले सकती थी, लेकिन भक्तिकाल की वेगमयी भावधारा के आगे वह टिक नहीं सकती थी। इसलिए धीरे-धीरे उसने उन जड़ों को पकड़ा जिनसे ज्यादा खुराक मिल सकती थी। जाहिर-सी बात है हिंदू सांप्रदायिकता के लिए मुसलमान विरोध से ज्यादा उपयुक्त जमीन दूसरी नहीं है। लेकिन वर्तमान का कोई आंदोलन सिर्फ अतीत की स्मृतियों के आधार पर खड़ा नहीं होता। उसे अपने काल में ही आधार-भूमि और उत्प्रेरक की जरूरत होती है और उसे मंडल आयोग की रपट से वे दोनों मिल गए। मंडल आयोग की रपट का प्रत्यक्ष विरोध भले न किया गया हो पर रथयात्रा उसका मुंहतोड़ जवाब ही थी। गिरिलाल जैन ने नाहक ही उसे 'मास्टर स्ट्रोक' नहीं कहा था। यह भी सिर्फ संयोग नहीं है कि मंडल समर्थक शक्तियों ने ही इस सांप्रदायिकता को नकल डाली। सांप्रदायिकता ने जाति संघर्ष के मैदान में सवर्णों में अपनी आधार-भूमि तलाश ली है। सवर्ण इसे सत्ता प्राप्ति का सबसे बड़ा हथियार बनाकर लड़ रहे हैं। स्वाधीनता पूर्व की सांप्रदायिकता 'एलीट हिंदू' और 'एलीट मुसलमान' के सत्ता-संघर्ष की उपज थी। लेकिन आज की सांप्रदायिकता 'एलीट-सवर्ण' और 'एलीट-पिछड़े व दलितों' के सत्ता संघर्ष की उपज है। इस संघर्ष में पिछड़ी और दलित शक्तियों का आचरण प्रगतिशील और धर्मनिरपेक्ष है। यह सकारात्मक बात है कि दलित चिंतकों के लेखन में मुसलमान

विरोधी टिप्पणियों के बावजूद वे एक-दूसरे को पसंद आ रहे हैं। लेकिन दलितों और पिछड़ों का मौजूदा उभार स्वाभाविक रूप से धर्मनिरपेक्ष है और आगे भी बना रहेगा—ऐसा सोचना भूल करना है। इसके लिए उसे सतत आत्मसंघर्ष से गुजरना होगा।

शंभुनाथ के इस संग्रह में जाति संघर्ष के बरअक्स धर्मनिरपेक्ष संस्कृति के विवेचन की तलाश निराशा की तरफ ही ले जाती है। वह ब्राह्मणवादी संस्कृति और साहित्य को दलित संस्कृति से मिलने वाली चुनौती पर ध्यान नहीं देते। कहीं-कहीं वह पिछड़ों व दलितों के विभिन्न सांस्कृतिक आंदोलनों को जातिवादी कहकर चलते बनते हैं।

इसके अलावा इस संग्रह में आमतौर पर हिंदू धर्म-दर्शन या उसी से व्युत्पन्न दर्शनों को समझने की कोशिश है। इस्लामी संस्कृति या धर्म-दर्शन और उसकी धर्मनिरपेक्ष धाराओं के विवेचन का प्रयास नहीं है, जबकि बहुसंख्यक समाज के बुद्धिजीवियों पर अक्सर यह आरोप लगता रहा है कि वे दूसरे धर्मों को समझने का प्रयास ही नहीं करते।

धर्मनिरपेक्ष संस्कृति की तलाश के दौरान हम एक और स्थिति से रू-ब-रू हुए बिना बच नहीं सकते। वह है—आधुनिकता और उत्तर आधुनिकता के प्रति पारंपरिक समाजों की प्रतिक्रिया। पश्चिमी सांस्कृतिक आक्रमण के साथ आ रही आधुनिकता के प्रति हिंदू और मुसलमान दोनों समाजों में प्रतिक्रियाएं हो रही हैं लेकिन मुसलमान समाज की प्रतिक्रिया ज्यादा तीखी है। स्त्री अधिकारों के सवाल पर समय-समय पर होने वाले विवाद उसकी एक झलक हैं। शाहबानो, मेरी रॉय और तसलीमा का विवाद तो प्रकट हो जाता है लेकिन पारंपरिक समाजों के भीतर आधुनिकता के साथ कई स्तरों पर संघर्ष चल रहा है। इस संघर्ष में वह समाज खुलता भी है और बंद भी होता है। जब वह बाहरी हस्तक्षेप के प्रति अपने को चहारदीवारी में बंद करता है तो कट्टर हो जाता है और जब इस हस्तक्षेप के लिए पड़ोसी समाज को दोषी मानकर उस पर हमला करता है तो सांप्रदायिक हो जाता है। यह जरूरी नहीं कि हर समाज अपने पारंपरिक चरित्र को बनाए रखने के प्रयास में सांप्रदायिक ही हो जाए। वह आधुनिकता के आक्रमण के विरोध में पड़ोसी पारंपरिक समाज से गठजोड़ भी बना सकता है। यह भी आवश्यक नहीं कि उसकी आधुनिक होने की प्रक्रिया धर्मनिरपेक्ष ही हो। वह आधुनिक संस्थाओं पर कब्जा करने और उससे ज्यादा से ज्यादा लाभ कमाने के लिए सांप्रदायिक आचरण कर सकती है। आधुनिकता के प्रति पारंपरिक समाजों की प्रतिक्रिया, असमानता के खिलाफ उन समाजों के अंतर्संघर्ष और पड़ोसी समाज से उनकी प्रतिस्पर्धा और समन्वय, कई स्तरों पर चलने वाले ये जटिल संघर्ष ही किसी बहुधार्मिक व बहुजातीय समाज में धर्म-निरपेक्ष संस्कृति का निर्माण करते हैं। अगर इन संघर्षों का सम्यक सामाजिक अभियंत्रण नहीं होगा तो ऊपर से थोपा गया धर्मनिरपेक्षता का ढांचा चरमरा सकता है।

अयोध्या आंदोलन या संघ परिवार की सांप्रदायिकता की जड़ें दक्षिण भारत में क्यों नहीं जम पाई? क्या उसकी वजह वहां की राजनीति में सर्वर्ण जातियों का प्रभाव नगण्य होने में है? इस सवाल के सामाजिक

और राजनीतिक विश्लेषण से उत्तर भारत के पिछड़े और दलित आंदोलन की परिघटना और उसमें धर्मनिरपेक्ष संस्कृति की तलाश में मदद मिल सकती है। वह 'सद्गति की दलित त्रासदी' वाले लेख के माध्यम से दलित चेतना और दलित पेंथर्स आंदोलन पर कुछ टिप्पणी जरूर करते हैं लेकिन वह प्रेमचंद की दलित चेतना पर ठहरकर उसके अब तक के सारे विकास को नकार देते हैं। जबकि आज का दलित साहित्य जातिवादी शोषण के खिलाफ गहरे आक्रोश से भरा हुआ है। उसने अब तक की साहित्य की बुनियादी प्रस्थापनाओं को झकझोर दिया है। *अक्करमासी* का नायक *सद्गति* के दुखों की तरह पंडित की लकड़ी चीरते हुए नहीं मर जाता, वह अपने अस्तित्व को लेकर सवालियों की झड़ी लगा देता है। *सद्गति* का दुखो जिस तरह से पराजित होता है वह उस तरह से पराजित होने को तैयार नहीं है। अब वह वर्ण-व्यवस्था को लचीला बनाने या शुद्ध करने के लिए चलाए गए गांधी के हरिजनोद्धार कार्यक्रम से संतुष्ट होने वाला नहीं है। हालांकि हिंदी भाषी क्षेत्र में अभी महाराष्ट्र, कर्नाटक और आंध्र प्रदेश जैसी सांस्कृतिक दलित चेतना का प्रसार नहीं हुआ है, पर राजनैतिक चेतना का प्रसार हो रहा है इसलिए देर-सबेर उसका आना अवश्यभावी है।

आज का दलित साहित्य अपनी दीर्घ परंपरा और अलग अस्तित्व के लिए छटपटा रहा है। वह अपने को साखी, सबदी, दोहरा की परंपरा वाले कबीर, दादू, रेदास और रज्जब से जोड़ रहा है, तो दूसरी तरफ अभिजात वर्गीय साहित्य के समक्ष गंभीर चुनौती खड़ी कर रहा है। स्थापित सौंदर्य शास्त्रीय खांचे में फिट न होना ज्यादा समय तक उसका दोष नहीं रहने वाला है, एक दिन यही उसका गुण बनने वाला है। धर्मनिरपेक्ष संस्कृति के विकास में ये परस्पर विरोधी साहित्यिक प्रवृत्तियां महत्वपूर्ण योगदान देंगी। इसीलिए प्रतिरोध स्वर के रूप में पैदा हुए उस साहित्य को जातिवादी साहित्य बताकर उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। शंभुनाथ अगर अपने संग्रह में इस विषय का प्राचीन धर्मदर्शनों की तरह ही महज विवेचन करते तो उनका यह प्रयास बहस और विचार-विमर्श के लिए और ज्यादा ऊर्जा उत्पन्न करता।

ईश्वर को मानने और धर्मनिरपेक्ष होने के आपसी रिश्ते पर सटीक टिप्पणी करते हुए शंभुनाथ कहते हैं, 'ईश्वर से बढ़कर धर्मनिरपेक्ष कौन है? पूरा भक्ति आंदोलन धर्मनिरपेक्षता का गवाह है। क्या आधुनिक युग के धर्म प्रेमी उस युग के भक्तों से ज्यादा श्रेष्ठ हैं? संत कवियों ने ऐसे ईश्वर का अनुभव किया जो मंदिर और मस्जिद में न होकर, किसी धार्मिक अनुष्ठान में न होकर, योग और वैराग्य में भी न होकर मनुष्य के अंदर ही विद्यमान है और उसके लिए पाखंड और भाग-दौड़ की जरूरत नहीं है।'

इसी सिलसिले में उनकी यह टिप्पणी भी महत्वपूर्ण है, 'भारतीय परंपरा में नास्तिक वह है जो वेद की निंदा करता है, वह नहीं जो ईश्वर को नहीं मानता। इससे स्पष्ट है कि धर्म का ईश्वर से संबंध अनिवार्य

नहीं है। भारतीय दर्शन की यह देन कम महत्वपूर्ण नहीं है।

वैसे तो भक्ति आंदोलन कुल मिलाकर सांप्रदायिक एकता और धर्मनिरपेक्षता की उर्वर भावभूमि तैयार करता है और जातिवादी ढांचे का धार्मिक आधार कमजोर करता है। पर इसमें भी कई धाराएं रही हैं और उनकी चेतना का स्तर अलग-अलग रहा है। इसका समाज पर प्रभाव भी अलग पड़ा है। इस अंतर को उद्घाटित करते हुए वह कहते हैं, 'संत अंतर्धारा के सभी महत्वपूर्ण कवि दलित हैं और राम भक्ति धारा का एक भी कवि दलित नहीं है।'

'.... अपने मानवतावादी रुझानों के बावजूद तुलसी अंतिम भूमिका में रामानुजाचार्य के नजदीक चले जाते हैं। रामानुज के धर्म में कट्टरता पूरी तरह खत्म नहीं हुई थी। उदारता पूरी शुरू नहीं हुई थी। तुलसी के निकट मामला उलट गया था। कट्टरता पूरी शुरू नहीं हुई थी और उदारता पूरी खत्म नहीं हुई थी। यही वजह है तुलसी एक ऐतिहासिक भूमिका निभाते हुए भक्ति की चेतना को अंतःविपर्यय के दरवाजे पर खड़ा कर देते हैं। धर्म की जिस नाव को संत अंधी आस्था के तट से विवेक के मुहाने तक ले आए थे, उसे वह पुनः अंधी आस्था के तट पर बांध देते हैं। यदि तुलसी के मुंह से वर्ण व्यवस्था, धार्मिक पाखंड और संप्रदायवाद का विरोध प्रकट हो जाता तो हिंदी क्षेत्र में लोक जागरण का स्तर दूसरा होता।'

वह संत साहित्य को भक्ति आंदोलन का एवरेस्ट बताते हुए इसके विपर्यय का कारण सांप्रदायिक पंथों के संकीर्ण विभाजन में देखते हैं।

इस सिलसिले में वह रामविलास शर्मा की सही खिंचाई करते हैं।

शंभुनाथ के शब्दों में ही अगर सनातन का बार-बार पुनरुत्थान और नई चेतना का बार-बार विपर्यय भारतीय समाज की परंपरागत ट्रेजडी है तो शुद्धतावादी और उच्छेदवादी दृष्टिकोणों से बचते हुए भारतीय संस्कृति के समन्वयवादी और रचनात्मक दृष्टिकोण से इस विपर्यय को रोका जा सकता है। इस योजना में संस्कृति और साहित्य की प्रमुख भूमिका होगी। विशेषज्ञता के गुणों को खोए बिना साहित्यिक हस्तक्षेप का दायरा बढ़ाना होगा और सांस्कृतिक पुनर्गठन के लिए पुनरुत्थानवाद और मुक्त बाजार की निरंकुश सभ्यता पर तेज प्रहार करना होगा। यही इस संग्रह का संदेश है।

इस संग्रह का एक और लेख 'दर्शन का लोकतंत्र' विद्वत्पूर्ण तथा प्रेरक है। प्राचीन भारतीय दर्शनों का परिचय देते हुए उनकी विवेचना के दौरान लेखक के निष्कर्ष हमारी दीर्घ परंपरा की श्रेष्ठताओं को उभारते हैं: 'धर्म में असहमति की भारतीय परंपरा बहुत प्राचीन है। ... बाह्य प्रदर्शन और हिंसा को साहसपूर्वक काफी पहले बुरा घोषित किया गया और बौद्धिक चिंतन पर सांप्रदायिक फासीवाद भारतीय परंपरा नहीं है। यही वजह है, कपिल के दर्शन को उपनिषद में भी सम्मान मिला और बौद्ध धर्म में भी। इसका मतलब है कि वैचारिक संघर्ष ही नहीं, अंतर्मिश्रण भी भारतीय यथार्थ है।'

अंत में इस संग्रह का स्वागत करते हुए आशा की जाती है कि शंभुनाथ हिंदी जगत की चेतना को झकझोरने का यह सिलसिला बनाए रखेंगे। □

झांसी

पृष्ठ 35 से आगे

"क्या है, झांसी?" मेरी उत्सुकता बढ़ रही थी।

"पिछले मास रेल दुर्घटना में ये....."

"झांसी!"

मैं टूट गया। झांसी ऐसे तटस्थ स्वर में बोल रही थी, मानो किसी और पर बीती सुना रही हो। अप्रतीक्षित धक्के से मैं हड़बड़ा गया। मैं सोच भी न सका कि इस शोक में झांसी कैसे तड़प रही होगी! बहुत देर मौन छाया रहा।

उसको तसल्ली देने के लिए मैंने मौन भंग किया, "पृथ्वी कौन-सी कक्षा में पढ़ता है, झांसी?"

"बच्चा भी उनके साथ ही.....।"

"ऐसा कैसे हुआ, झांसी?" मेरी आंखों से आंसू छलके। मुड़कर मैंने कुर्सी पर मुंह टिका लिया।

आगे कुछ भी नहीं है, ईश्वर! केवल एक शुभ समाचार है। मुझे पदोन्नति मिली है। अगले मास उत्तर भारत जा रही हूं।"

बधाई दिए बिना मैंने विदा मांगी।

उसने मेरे हाथ में दो सौ रुपये ठूसते हुए कहा, "बच्चों के लिए कुछ खरीद ले जाइए।"

मन भारी था। ऐसी हालत में मना करने की हिम्मत नहीं हुई।

"आपने जो अंधकार बताया, क्या वह यही है, ईश्वर?" अचानक झांसी ने पूछा।

उसे वेदना और करुणा से देखा।

"मैंने शाप नहीं दिया, झांसी! तुम्हारी नास्तिकता से असहमति के कारण सिर्फ तर्क के वास्ते जो कहा वह सच हो जाएगा, ऐसा स्वप्न में भी नहीं सोचा था, झांसी!" मैंने अत्यंत वेदना भरे स्वर में कहा।

झांसी ने मेरी बात के समर्थन में सिर हिलाते हुए कहा, "मुझे नास्तिकता के लिए भगवान इतना बड़ा दंड देने वाला कोई क्रूर होगा, ऐसा मैं नहीं मानती, ईश्वर!"

मैंने विस्मय से उसको देखा। उसके सिद्धांत की जड़ें बहुत गहरी उतरी हैं, कोई भी तूफान उसे हिला नहीं सकेगा—ऐसा दृढ़ निश्चय उसमें था। वह मुझे सचमुच झांसी की रानी-सी लगी। नाव और पतवार के छिन जाने पर भी, हाथों के बल से, किनारे पहुंच सकने की क्षमता रखने वाली दृढ़ता उसमें थी।

तभी दूर तक फैले अंधकार में रास्ता देखती हुई वह बोली, "ईश्वर! बस आती-सी लग रही है।"

मैंने देखा, दूर प्रकाश की किरण टिमटिमा रही थी। □

सूफियाना खयालों की संग-तराशी और दुख का जंगल

प्रताप सिंह 'पारखी'

पाकिस्तान की उर्दू गज़ल को नई जमीन देने वाले चंद शायर ऐसे भी हुए हैं जो रूहानी तबियत के लगते हैं। पर उनके सूफियाना खयाल की रंगत इस मिज़ाज के दूसरे शायरों से जुदा है। उनकी सोच का मंजर माहौल को करीब से महसूस कराने वाले शायरों के आला नजरिए से मेल खाता है। ऐसे ही चंद शायरों में नासिर काज़मी एक बड़ा नाम है। उनके हमअस्र¹ फन-ए-सुखन में माहिर मजीद अहमद, ज़फ़र इक़बाल, शकीब जलाली, मुनीर नियाज़ी, कैफ़ अंसारी, मोहसिन एहसान और रियाज़ मज़ीद शायरी की नई परंपरा से वास्ता रखने वाले नाम हैं। इनके बाद चंद नाम और रौशन हुए हैं जो खुद एक रवायत को जन्म देने वाली पीढ़ी से ताल्लुक रखते हैं। ये हैं — जमाल अहसानी, गुलाम हुसैन, परवीन शाकिर, अहमद नदीम कासमी, अनवर सज्जाद, अहमद फराज़ और जॉन ईलिया।

नासिर काज़मी जदीद शायरी के अपने साथ के इन रचनाकारों में 'तर्क मुहब्बत' और 'तर्क दुनिया' की संगतराशी के साथ-साथ यास² के पहलू में लिपटे रहने और 'हिना-ए-पा-ए-खिज़ां'³ में बहार के चरचे के लिए ही जाने जाते हैं। यूँ खुद उनका कहना है—'आज का शायर एक नई आवाज़ पैदा करना चाहता है जो उसके अपने गिर्द-व-पेश और उसके अपने आसमानो-जमीन से भी इलाका रखती हो'⁴। जाहिर है—यह वास्ता सिमटकर और उनकी शायरी में मौजूदा यथार्थ से भटककर 'आसमानी रूहानी' तस्वीरें खींचने में ही ज्यादा काम आया या ज़ाया हुआ है। वरना तो अपनी नई आवाज़ को वह सबकी आवाज़ बना पाते। इन्हीं वक्तों के एशिया के सबसे अहम शायर फ़ैज़ अहमद फ़ैज़ ऐसे शायरों को

राह पर लाने के लिए ही फरमा गए हैं—'शायर का काम महज़ मुशाहदा⁵ ही नहीं, मुज़ाहदा⁶ भी उस पर फर्ज है। गिर्द-ओ-पेश के मुज़तरिब⁷ कसरों में जिंदगी के दजला⁸ का मुशाहदा उसकी बीनाई पर है। इसे उसके बहाव में दखल अंदाज़ होना उसके शौक की सलाबत⁹ और लहू की हरात पर'¹⁰।

लेकिन नासिर काज़मी की शायरी का रूदादे-सफ़र¹¹ खामोशी की राह तलाशते-तलाशते ही दिल की किन्हीं गहराइयों में गुम हो गया है। उनका फ़िक्र-ओ-अमल¹² वहशतों से दूर पर प्रेम के रास्ते के नाजुक मरहलों को छूकर दुख और तनहाइयों में डूब गया है। मसलन वह कहते भी हैं —

एक समय तेरा फूल-सा नाजुक हाथ था मेरे शानों पर
एक ये वक्त कि मैं तनहा और दुख के कांटों का जंगल

(ध्यान यात्रा, पृ. 225)

नासिर काज़मी ध्यान यात्रा



यह भटकन, यह ठहराव, यह खामोशी शायरी को दिशाहीनता ही देते हैं, कुछ और नहीं। यही खास वजह है कि नासिर काज़मी की एक बड़े शायर की शख्सियत होते हुए भी किसी प्रगतिशील आंदोलन से वह वाबस्ता नहीं हैं। बेशक उनकी सादगी बोलती है और तड़प कहीं-कहीं अवाम से भी जुड़ती है। उनकी बजाय जॉन ईलिया, अहमद नदीम कासिमी और अहमद फराज़ आज कहीं ज्यादा बड़े शायर नजर आते

1. समकालीन, 2. उपासी, 3. पतझड़ के पांव भी मेहंदी,
4. एतबारे नग्मा (भूमिका से) 5. देखना, 6. कोशिश,
7. व्याकुल 8. दरिया का नाम, 9. दृढ़ता, 10. फ़ैज के संग्रह 'दले सब' भी भूमिका से, 11. यात्रा वृत्तांत,
12. चिंतन-कर्म

हैं और हैं। पाकिस्तान के खराब हालात, निरंकुश तानाशाही और जनविरोधी सत्ता के विरोध में नासिर काज़मी भी हैं पर वह उनका मूल-स्वर नहीं है। कमोबेश इसकी नुमाइंदगी और प्रगतिशील विचारों की झलक उनसे ज्यादा तो परवीन शाकिर की गज़लों और नज़्मों में दिखलाई पड़ती है। जबकि रुझान में कहीं-कहीं वह भी नासिर के ही मिजाज़ की हैं :

बारिश हुई तो फूलों के तन चाक हो गए
मौसम के हाथ भीग के सप्फाक हो गए।

—परवीन शाकिर

तो भी नासिर काज़मी हमारे वक्तों के 'ध्यान की मशाल'। जलाए रखने वाले शायर हैं। नासिर काज़मी का जिक्र जदीद शायरी के सिलसिले में खास तौर से आज इसलिए भी जरूरी है क्योंकि अब भी लोग उनकी तनहाई के हमसफर हैं और एक अहद के आदाब सीखना चाहते हैं। हाल ही में एक बड़ी किताब *ध्यान यात्रा* नासिर की कलम से शाया हुई है जो कि उनकी शायरी का आईना है और उनकी शायरी की हदें भी उसमें दिखलाई पड़ती हैं।

ध्यान यात्रा के पहले भाग में (बर्गे नै), (बर्गे रेज़), (दीवान), (मुतफरिफ अशआर), (पहली बारिश) और (सुर की छाया) नासिर के नग्मे, शेर और भरे-पूरे किरदारों से भरपूर एक कथा रूपक को शामिल किया गया है। पहले भाग में शेर और ज्यादातर छोटी बहर की गज़लों की बारिश बरपा है तो साथ ही 'सुर की छाया' शीर्षक से एक काव्य कथा को तेरह मंज़रों में पिरोया गया है जिसे इसी शायर ने रचा है।

ध्यान यात्रा का दूसरा भाग नासिर के गद्य से ताल्लुक रखता है और उनकी जिंदगी के पड़ावों से भी। दूसरे भाग में रचनाकार के विषय में आफताब अहमद (उदास शायर, अजनबी मुसाफिर) सुगरा बीबी (हिसारे-जिस्म-व-जां), इंतज़ार हुसैन (चार घड़ी यारों का मेला), नासिर काज़मी से आखिरी गुफ्तगू और *ध्यान यात्रा* को हिंदी पाठकों तक पहुंचाने वाले उनसे रू-ब-रू कराने वाले शरद दत्त और बलराज मेनरा के चंद अलफाज़ हैं, जिन्होंने हिंदी में छपने वाले इस उर्दू काव्य संग्रह का संपादन किया है।

नासिर काज़मी (जन्म : अंबाला, 2 मार्च 1925) अपनी जिंदगी के 47 सालों में तबियत से हस्सास (भावुक) और नाजुक मिजाज़ ही रहे होंगे। वरना उन्हें भी फैज़, और फिराक वाली सोच की पगडंडी कुछ-कुछ हासिल होते हुए भी 'नरमदिली' और 'गमे पायदार' ने ही क्यों घेरे रखा।

बहरहाल दुनिया की नापायदारी¹³ का एक अलहदा नक्शा नासिर काज़मी की कलम ने जरूर खिंचा। उनके कलाम में कायनात वीरान नजर आती है। इंतज़ार हुसैन ने उनके बारे में ठीक ही लिखा है¹⁴ :

“.... गिरिया¹⁵ नासिर का मसलक¹⁶ नहीं था। न शायरी में न जिंदगी में। इस आशिक का मसलक था उदासी। यूं नासिर किसी भी वक्त उदास होने का ऐलान कर सकता था। मगर उदास होने का जो ऐलान आखिरे शब में होता था, वह कुछ और ही आलम रखता था।”
मसलन :

ख्याल-ए-तर्क-ए-तमन्ना न कर सके तू भी
उदासियों का मुदावा¹⁷ न कर सके तू भी।

या फिर नासिर का सबब वीरानी से है :

क्यों न खींचे दिलों को वीराना
उसकी सूरत भी अपने घर-सी है।

खुद नासिर शुरू से उदासी की लकीरें खींचने वाला शायर कतई नहीं रहा। एक मुकम्मल शायर के बावत उसका इजहार कुछ इस तरह था¹⁸ :

‘वह जिन लोगों में बैठ जाता उनके दिलों का तार मिला लेता। जानी-पहचानी धरती का हर गोशा और धड़कनों के सारे मसकल उसकी जागीर थे। पास-पड़ोस के सारे बासी उनकी आवाज पर फरेफता थे। उसके जरिए धरती का राबता आसमानों से जा मिलता था। उसका अपना अलमिया भी जा-बज़ा नुमायां हो रहा था।’ पर उनकी अपनी नालाआफरी¹⁹ कितना नग्मे के रूप में ढल सकी और उनकी शायरी उनके खुद के जज़्बातों की, पास की और ध्यान की मंजिलों की तलाश को कितनी खूबसूरती से नुमायां कर सकी—यही विचारणीय है।

दरअसल नासिर चुपके से दिल में उतरने वाला शायर है, जिसे हवाएं जंजीरें पहना देती हैं और खामोशी की उंगलिया उसे इस दरमियान चटकती सुनाई पड़ती हैं। कोई आवारा महक उसे दबोच लेती है। गुलजमीनों की हवा भी उसे अपने भीतर से गुजरती महसूस होती है। पर उसकी आवारगी और एकांत का भी कोई एक जाना-पहचाना छोर नहीं है। वहां भी इंतज़ार है और उस शह से गुजरने का ज़ब्बा किसी एक नाजुक घड़ी का मुंतज़िर है —

ध्यान की सीढ़ियों पे पिछले पहर
कोई चुपके से पांव धरता है।

नासिर एक आत्मकेंद्रित कवि हैं जिनके दिल की गहराइयों और फाकामस्ती का पता भी उनकी दूसरे मूड की रचनाओं में से गुजरकर ही लग सकता है। एक जगह नासिर काज़मी अपना आपा इस तरह बयान करते हैं :

मेरा दिल खूगरे-तूफां²⁰ है वरना
ये किशती बारहा²¹ साहिल से गुज़री

13. अस्थिरता; 14. ‘चार घड़ी यारों का मेला’ पृष्ठ 375 (ध्यान यात्रा); 15. चीख पुकार; 16. पंथ; 17. इलाज 18. ‘एतबारे-नग्मा’ (पृष्ठ - 13); 19. करुण पुकार 20. तूफानों का अभ्यस्त 21. कई बार

नासिर में अपने वक्त की खनक और संघर्ष की कोख से जन्मी बदलाव की उम्मीदों के संकेत भी मिलते हैं।

फिर खाकनशीं उठाएंगे सर
मिटने को है नाज़े कजकुलाही²²

यूँ हल्के रंग की गज़लों में 'तर्क-ए-मोहब्बत' से लेकर बदहाली के दस्तूर तक पर छिटाकशी और दूसरे के गम को ज्यादा तरजीह देकर पेश करने का हुनर भी उनके पास है। मसलन :

देख मुहब्बत का दस्तूर
तू मुझसे मैं तुझसे दूर
दोस्त बिछड़ते जाते हैं
शौक लिए जाता है दूर।

लेकिन इस बीच ही एक नया यथार्थ भी उभरता है —

हम अपना गम भूल गए
आज किसे देखा मजबूर . . . ।

यूँ ही नासिर अवाम के करीब जाते हैं और टैक्सी वाले, तांगे वाले तक उनके मुरीद बन जाते हैं। यहां तक कि आखिरी वक्तों में इनका एक प्रतिनिधिमंडल उन्हें अस्पताल मिलने गया था। मरहूम मेरठी तांगे वाले से उनकी जान-पहचान का किस्सा इंतज़ार हुसैन (आखिरी गुफ्तगू—पृ. 403) को नासिर ने इंटरव्यू में बड़ी ही सहजता से बयान किया है। घुटनों तक बारिश में भीगता-भीगता एक तांगेवाला उनका यह शेर सुनकर किस तरह उबल पड़ा था और हर बार सफर में उन्हें मुफ्त ही अपने तांगे में ले जाता रहा। कविता के जरिए आम लोगों के दिल में जगह बना लेने की करामात नासिर को भी हासिल रही होगी। बहरहाल शेर यूँ है :

वाकया ये है कि बदनाम हुए
बात इतनी थी कि आंसू निकला...

पर यह ज़ब्ज़ा नासिर के दीवान की ऊंचाइयों का एक हिस्सा है। फकत इतने से ही इस शायर की शायरी की हदों तक नहीं पहुंचा जा सकता। अपने फन की इनकी सादगी और संप्रेषणीयता भी खास मायने रखती है। अहमद नदीम कासमी भी नासिर को एक बेहतर गज़लगो मानते हैं और उनकी सादगी पर मरते हैं।

..... कुछ जो आया है शेर में ढंग।
यह भी 'नासिर' से ही सीखा होगा।

पर यह कमाल कोई पहली बार नहीं हुआ। शायर का कुर्ब (बेचैनी-टीस) उनके खुद के गाफिल न रहने की सूरत में ही ज्यादा सही तौर पर स्याही की शकल में नुमायां हो पाया है। फिराक साहब के बारे में नक़्श पत्रिका ने यहां तक लिखा था — “उसने जहर को तिरयाक²³ बनाया है और यही उनकी गज़ल की रूह है। यह दोजख और जन्नत दोनों से मिलकर बनी है।”

कुछ यादे सितमगर ही ले चलें

कुछ यादगारे-शहरे-सितमगर¹ ही ले चलें
आए हैं इस गली में तो पत्थर ही ले चलें
यूँ किस तरह कटेगा कड़ी धूप का सफर
सर पर ख्याले-यार की चादर ही ले चलें
रंजे-सफर की कोई निशानी तो पास हो
थोड़ी-सी खाक-ए-कूच-ए दिलबर² ही ले चलें
ये कह के छेड़ती है हमें दिल-गिरफ्तगी³
घबरा गये हैं आप तो बाहर ही ले चलें
इस शहरे-वेचराग में जाएगी तू कहाँ
आ ऐ शबे-फिराक तुझे घर ही ले चलें

1. उत्पीड़क के नगर की यादगार, 2. प्रियतम की गली की मिट्टी, 3. हृदय के व्याकुल होने की स्थिति

इन्हीं फिराक साहब का नासिर काज़मी पर भी असर होना लाज़िमी है। उतना ही जितना कि ग़ालिब और मीर का असर उनमें साफ़ झलकता है। नासिर का यह शेर :

मैं हूँ रात का एक बजा है
खाली रस्ता बोल रहा है।

फिराक के रंग सुखन की ही छटा लिए हुए है।

नासिर काज़मी के कुछ मिसरों का रंग ऐसा है कि लगता है जैसे फिराक साहब ही उनकी रूह में बोल उठे हों। मसलन :

हिज़्र में पिछले पहर का आलम
तारों को नींद आई हुई-सी

— फिराक

न पूछ आज शबे हिज़्र किस कदर है उदास
कहीं कहीं कोई तारा है और कुछ भी नहीं।

— नासिर काज़मी

पाकिस्तानी उर्दू गज़ल में, खासकर क्लबसिकी उर्दू गज़ल में आज जो तब्दीलियां आ रही हैं उनके निशान भी नासिर काज़मी की गज़लों और मजमुए में मिलते हैं। लेकिन ये तब्दीलियां मुकम्मल तौर पर नहीं आ सकी हैं। जैसा कि आलोचक वज़ीर आगा का मानना है : ‘अब गज़ल कहने वाले शायरों ने अपनी आंखें पूरी तरह खोलकर अपने चारों तरफ फैली हुई धरती को ध्यान से देखा है। यह माहौल ईरानी

22. बादशाहत का घमंड 23. विषनाशक दवा।

चमन का माहौल नहीं, जंगलों, शहरों, देहातों और खेतों का माहौल है। शायरों के यहां करीब की चीजों और पदार्थों को अनुभूति के दायरे में समेटने की कोशिश उभरी है, जिसके कारण गुज़ल को ताज़ा खून मुहैया हो गया है।' (औराक)

लेकिन यह नया फलसफा नासिर काज़मी के दीवान *ध्यान यात्रा* पर उनके तौर-तरीकों और तजुबों के मददेनजर कहीं-कहीं ही लागू होता है। वरना तो नासिर की इस कारगाहे-सुखन की एक अलहदा ही दस्तक सुनाई पड़ती है।

उदासी, नातमाम — उममें ही जिसकी वीरानगी और रूहानगी की खानगी का पता देती हों। बदहवासी, दुख, वफा, आवारगी और खामोशी जिसकी शायरी का फरोजा-मंजर हो। जो सुखनवर (कवि) अपनी ही स्मृति-विस्मृतियों की बदलियों से घटाटोप रहे। हुस्न की सादगी को जो निभाना जानता हो और फिर भी खुद को कामिल कहने से कतराए, जो सूफियाना-शायराना अंदाज़ का कायल हुए बगैर ही मौज, मन की बातें खूबसूरती से शायर कर सके। ये (सब) हुनर एक अदद शायर में नामुमकिन लगते हैं लेकिन नासिर काज़मी की शायरी की जमीन इन्हीं बूटों से खिली है।

कभी गमे-दौरां से तो कभी गमे-रोजगार से और अक्सर होशरुबा हुस्न से परेशां रहा यह शायर बदली हुई दुनिया में भी माजी (विगत) की तलाश करता है जो उसे कुछ पल की तसल्ली देता है। लरजिशें और धड़कते हुए दिलों की याद आवाजों के समां और पुराने हदो-पैमा को साथ लेकर चलने वाला यह शायर आखिर तक बेसाख्ता अकेला ही रहना पसंद करता है।

बस इतना ही असबाब और चांद-चांदनी के जज़ीरे नासिर के दिल के किसी कोने में रोशन जरूर है। यही हालात इस शायर की दुनिया के तंग नजरिए को भी कभी-कभी सामने रख देते हैं कि नासिर काज़मी जिस सफर पर निकले, जो रास्ता उन्होंने तलाशा जिस 'ध्यान मुद्रा' की ओर वह संकेत करते हैं—वहां बदल रही दुनिया के मुकम्मिल अक्स नहीं हैं तो क्यों नहीं हैं। माजी-ओ-हाल में अपनी हस्ती को मिटाकर रंजे हस्ती की चादर पर अपने संसार के इक्का-दुक्का आंसुओं के नग्मे बिखेरकर और फिर से खामोशी के वतन में तन्हा होकर नासिर काज़मी 'नाल-ए-आखिरे शब' सुनता-सुनता जैसे सो गया हो।

ये खामोशी तो रंग-व-पै में रच गई 'नासिर'
वो नाला कर कि दिल-ए-संग से सदा निकले।

नासिर काज़मी की *ध्यान यात्रा* के और भी कई पड़ाव इस किताब में रोशन हुए हैं। मगर कुछ खामियों के साथ उनके अहद की जड़ों की तलाश में 'मीर' के जज़्बे, मीराबाई, कबीर और सूर के सामाजिक विचार व भक्ति काव्य तक बारीकी से की गई पड़ताल और तुलना अतिशयोक्ति ही जान पड़ती है और प्रेम की सांसारिक छवि को आध्यात्मिक रंगत के पैमाने से नहीं जांचा-परखा जाना चाहिए था। उदासी को 'भजन' कहना

आज आसान हो गया है। पर मीरा के भजन की सरलता और नासिर की शायरी की सादगी दोनों अलहदा जाहिर होते हैं।

परिशिष्ट में नासिर की इंतकाल की तारीख 23 मार्च, 1972 दी गई है जबकि नासिर काज़मी की मौसी सुगरा बीबी के परचे 'हिसारे-जिस्म-ओ-जा' में साफ लिखा है कि उनकी मृत्यु 2 मार्च, 1972 को हुई। इन भूलों के बावजूद नासिर काज़मी की जिंदगी का एक पठनीय और महत्वपूर्ण दस्तावेज़ है।

**ध्यान यात्रा* : नासिर काज़मी; संपादक : शरद दत्त/बलराज मेनरा; सारांश प्रकाशन, दिल्ली; पृष्ठ सं. 416; मूल्य : 250 रुपये।

दस चुनी हुई फिल्में

पृष्ठ 29 से आगे

गर्भ को समाप्त करने के दौरान उसकी मृत्यु हो जाती है। अलिया ऐसी ही दुखद परिस्थिति में बड़ी होती है, जिसका सदमा स्थायी रूप से उसके मन पर बना रहता है। वास्तव में वह स्वयं राजकुमार की बेटी है। परंतु कोई भी व्यक्ति उसे यह सत्य बताने की हिम्मत नहीं कर सकता, यहां तक कि उसकी मां भी नहीं बता पाती।

निर्देशक ने इस फिल्म को बनाने में संवेदनशीलता, करुणा और लयात्मकता का उल्लेखनीय परिचय दिया है। नृत्य क्रम के दौरान अलिया की मां द्वारा प्रदर्शित किया गया उत्तेजक नृत्य बहुत प्रभावशाली है—जो आजकल की फिल्मों में बहुत कम देखने को मिलता है। इसमें कारुणिकता और व्यंग्य का मौन मिश्रण है जो फिल्म को गहराई प्रदान करता है। □

अनुवाद : रजनी सूद

कैनवास से परे

पृष्ठ 39 से आगे

मीडिया' संरचना, फोटो मोंटाज, टी.वी. स्क्रीन और न जाने क्या-क्या से फ्रांसीसी कला बनती है। कौसे के अनुसार, भारतीयों में परंपरा से जुड़े रहने की आकांक्षा और आधुनिक होने की महत्वाकांक्षा के बीच एक विरोधाभास रहता है, जो सहअस्तित्व का फ्रेम गढ़ता है।

सवाल है, क्या प्रदर्शनी भारतीय कला के साथ कोई अंतःक्रिया करती है? क्या इसमें कोई ऐसी चीज थी जो भारतीयता के निकट थी और भारतीय मनोभावों को संवेदित करती थी? भारतीय बाजारों से लाल साटन का कपड़ा खरीदकर और उसकी तहों के भीतर दो कजरी आंखें छिपा देने भर से या यमुना के किनारे से एक नाव लाकर संग्रहालय में रख देने से या अनेक टी.वी. सेटों का एक 'इंस्टालेशन' बना देने से एक संस्कृति का दूसरी संस्कृति में प्रवेश और परिचय की प्रक्रिया क्या पूरी हो जाती है? □

बदलता सामाजिक परिवेश और समकालीन कहानी

हरियश राय

समकालीन कहानी अपने समय के परिवेश को समग्रता से उद्घाटित करती हुई अपनी पूर्ववर्ती कहानी से काफी भिन्न है। यह भिन्नता दो स्तरों पर है—एक संवेदना के स्तर पर, दूसरी शिल्प के स्तर पर। संवेदना के स्तर का बदलाव समसामयिक जीवन के विभिन्न पक्षों को पूरी मार्मिकता और गहराई से उद्घाटित करने में है। संवेदना लेखक के भीतर आकार लेती हुई विकसित होती है और जीवन के अलग-अलग पक्षों को रेखांकित करती है। अमृतराय ने *दस प्रतिनिधि कहानियाँ* की भूमिका में कहानी के नएपन के बारे में लिखा है कि कहानी का नयापन दो बातों पर निर्भर करता है—वस्तु का नयापन और शिल्प का नयापन। कुछ दूर (विष्णु नागर), *त्रिकाल दर्शन* (कृष्ण कुमार), *दस प्रतिनिधि कहानियाँ* (अमृत राय), *मकान ढह रहा है* (शैलेंद्र सागर) की कहानियाँ कथावस्तु और शिल्प में आए नएपन को पूरी गहराई के साथ उद्घाटित करती हैं। नएपन को उद्घाटित करने के क्रम में हमारे सामने जो कुछ क्रूर, दमनकारी, हिंसक, अमानवीय होकर सामने आ रहा है उसे भी रेखांकित करती हैं। यही इन कहानियों की शक्ति और विशिष्टता है।

कुछ दूर * में विष्णु नागर की छोटी-बड़ी 33 कहानियाँ संकलित हैं। इन कहानियों के बारे में रघुवीर सहाय ने लिखा है—‘उनमें पात्र एक बड़े भारी षड़यंत्र के शिकार हैं। उनकी असहायता का आभास लेखक उनके प्रति एक आयामी सहानुभूति पैदा करके नहीं देता बल्कि एक पाठक को उस षड़यंत्र से निकलने की बहुआयामी छटपटाहट पैदा करके देता है।’ संग्रह की सभी कहानियाँ इस कसौटी पर खरी उतरती हैं।

समकालीन कहानी में विष्णु नागर की संवेदना बहुत गहरी है और मानवीय है। इनकी कहानियों के केंद्र में निम्न मध्यवर्गीय आदमी है, उसकी पीड़ा, उसके दुख, उसके संघर्षों को विष्णु नागर अपनी कहानियों के केंद्र में लाते हैं। ‘दर्जी’ संग्रह की महत्वपूर्ण कहानी है। एक निम्नवर्गीय व्यक्ति श्री पीस सूट जैसी मध्यवर्गीय पोशाक को एक अजीब आकर्षण, भय, कौतूहल के साथ देखता है और चाहता है कि ग्राहकों का श्री पीस सूट सिलने के सिवाय अपने लिए श्री पीस सूट सिए। वह बाहर की दुनिया के विवरणों को फैंटसी के माध्यम से सामने

रखते हैं और दर्जी की श्री पीस सूट सिलने की इच्छा को रहस्यमय और अर्थगर्भित बना देते हैं। जिस तरह के विवरण कहानी में आते हैं वे केवल यथार्थ के अंतर्विरोधों का चित्रण ही नहीं करते बल्कि निम्न मध्यवर्गीय व्यक्ति की इच्छाओं की अभिव्यक्ति भी करते हैं। यह कहानी इस तथ्य को उद्घाटित करती है कि मध्यमवर्गीय मन की कल्पनाशीलता, सुखों की उसकी अवधारणा विषमतायुक्त समाज में पूरी नहीं हो सकती। विषमतायुक्त समाज से मुक्ति के लिए वह ‘दर्जी के बच्चे’ कहानी में कल्पना करते हैं—“अगर एक दिन कपड़ा मिल मजदूर कपड़ा बनाना बंद कर दे, किसान खेती करना बंद कर दे तो बेचारे सेठों और बाबुओं का क्या होगा? ‘दुश्मन’ कहानी में इस सत्ता की वजह से ही निम्न मध्यवर्गीय व्यक्ति त्रस्त है। कहानी की शक्ति निम्न मध्यवर्गीय व्यक्ति की संवेदना को मुखरता के साथ अभिव्यक्त करने में है। ‘सत्य और असत्य’ कहानी में जीत असत्य की ही होती है। ‘असत्यमेव जयते’ विष्णु नागर ने प्रतीकों के माध्यम से उद्घाटित किया है।

संग्रह में ‘ईश्वर की कथाएं’ जैसी छोटी-छोटी कथाएं संकलित हैं। ये छोटी-छोटी कथाएं जीवन के संदर्भों के अनेक विवरण हमारे सामने रखती हैं। कथनों के माध्यम से इन लघु कथाओं में जो कुछ भी कहा जाता है वह एकदम दृश्य की तरह सामने आता है। विष्णु नागर इन कथाओं के माध्यम से अतीत का इस्तेमाल करते हुए आज के समय के अंतर्विरोधी स्थितियों को उद्घाटित करने वाले कहानीकार हैं। देखा जाए तो उन्होंने अपनी इन कहानियों में कहानी के दृश्य विधान, संवाद जैसे तत्वों को छोड़ दिया है और कथनों के माध्यम से अपनी बात कहते हैं। ईश्वर की कथाओं के माध्यम से अतीत में क्या हो रहा था, कितनी गहराई तक घटित हुआ था, मनुष्य के साथ उन घटनाओं का क्या रिश्ता था, उस युग की क्या परिस्थितियाँ थीं और आज क्या स्थितियाँ हैं, यह सब कहानीकार की स्मृति और चेतना में रहता है और कथनों के माध्यम से व्यक्त होता है। विष्णु नागर की कहानियों की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि वह ईश्वर को सामान्य मनुष्य के रूप में

* कुछ दूर : विष्णु नागर; आधार प्रकाशन, पंचकुला, हरियाणा; पृष्ठ : 138; मूल्य : 60 रुपये।

परिकल्पित कर व्यंग्य और विद्रूप पैदा करते हैं। 'राम और उसकी जन्मभूमि' में इस विद्रूप के सहारे हिंदू सांप्रदायिकता पर व्यंग्य किया गया है। समकालीन परिवेश को उद्घाटित करने में विष्णु नागर ने कई कहानियों में फैंटसी और अतिकल्पना का सहारा लिया है 'चलते पेड़', 'फल-1', 'फल-2' 'ईश्वर को तीन सपने आए', 'आदमी और चिड़िया' आदि महत्वपूर्ण कथाएं हैं।

संग्रह की लघु कथाएं अपनी विशिष्ट पहचान बनाती हैं। विष्णु नागर की छोटी-छोटी लघु कथाएं अत्यंत अर्थवान हैं और उनके सामने भयानकतम अंतर्विरोधों से ग्रस्त समाज है, मनुष्य विरोधी शासन तंत्र है। 'आने वाला जमाना', 'कहानीकार', 'इलाज', 'चोरी और सीना जोरी', 'नेतृत्व-निष्कर्ष' जैसी लघुकथाओं में समसामयिक यथार्थ के क्रूरतम स्वरूप को उद्घाटित किया गया है। सांकेतिकता और प्रतीकात्मकता इन लघुकथाओं की मुख्य विशेषता है।

कुछ दूर की सभी कहानियां विवरणों की कहानियां हैं लेकिन इन विवरणों के द्वारा विष्णु नागर अपनी कहानियों में एक प्रभाव पैदा करते हैं। वह इन विवरणों के माध्यम से संदर्भों, घटनाओं, प्रसंगों और परिवेश को बखूबी उद्घाटित करते हैं।

कृष्ण कुमार अपने कथा संग्रह *त्रिकाल दर्शन* की कहानियों में अनगिनत परतों के नीचे छिपी बच्चों की मानसिकता को, उनके आचरण को, उनके व्यवहार को देखते हैं और यह देखना ही उनकी कहानियों को विशिष्ट बनाता है। बच्चों की दुनिया, बच्चों की समझ, मां-बाप के बारे में उनकी सोच के कई विवरण उनकी कहानियों में देखने को मिलते हैं।

इन विवरणों में अनेक व्यंजनाओं के माध्यम से कृष्ण कुमार बच्चों की मानसिकता को उद्घाटित करते हैं। इनके साथ ही कृष्ण कुमार अपनी इन कहानियों में निम्न मध्यवर्गीय व्यक्ति का एक खौफनाक जटिल और बहुआयामी जीवन भी दर्शाते हैं।

त्रिकाल दर्शन * संग्रह की कहानियों को तीन श्रेणियों में रखा जा सकता है। पहली श्रेणी में वे कहानियां आती हैं जिसमें बच्चों की मनः स्थिति को, उनके सोचने के स्तर को, उनकी मानसिकता के निर्माण की प्रक्रिया को कहानियों का केंद्र बिंदु बनाकर रचनात्मक धरातल पर प्रस्तुत किया गया है। दूसरी श्रेणी की कहानियां निम्न मध्यवर्गीय मनुष्य से संबंधित एक खास तरह की कहानियां हैं जिनमें व्यंग्य, विषाद, मासूमियत, करुणा और विरक्ति के माध्यम से निम्न मध्यवर्गीय मनुष्य के अंतर्जगत के बारीक विवरण हैं। तीसरी श्रेणी की कहानियां ऐसी हैं जो भारतीय समाज के सामाजिक-आर्थिक क्षेत्रों के जटिल विकास के बीच मनुष्य की स्थिति को प्रकट करती हैं और यथार्थ की अमानवीयता को सामने लाती हैं। बच्चों की मनः स्थिति से संबंधित कहानियां बच्चों की सोच के विभिन्न स्तरों को उद्घाटित करती हैं।

* *त्रिकाल दर्शन* : कृष्ण कुमार; प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली; पृष्ठ संख्या : 120; मूल्य : 75 रुपये।

कृष्ण कुमार अपनी इन कहानियों में कई तरह के सवाल खड़े करते हैं जो बच्चों की सोच को सामने लाते हैं। अजय यह सोचता है: "दो-दो टुकड़े आखिर कब तक चलेंगे। वह जिस टुकड़े में है उसे कैसा होना चाहिए, छोटा या बड़ा।" बच्चों की सहज जिज्ञासाओं, प्रश्नों को किस तरह मध्यवर्गीय संस्कार रोकते हैं इसका संकेत 'अम्मा का बेटा' कहानी में मिलता है। 'रोओ मत रवि' में माता-पिता की अपनी इच्छाओं, मान्यताओं, रुचियों को बच्चों पर आरोपित करने पर पैदा होने वाले व्यंग्य और विद्रूप का संकेत है। इसी तरह 'लंकापुरी' में खंडहर की दीवारों में लिखे शब्दों, वाक्यों, बिना कपड़े पहने लड़कियों के चित्रों को देखने से बच्चों के सहज संबंधों पर जो प्रश्नचिह्न लगता है, उसका बारीकी से विश्लेषण कर मानसिकता को सामने रखा गया है। 'जंगल का राजा' में विश्वविद्यालय में रहने की ललक और जीवन साथी की तलाश की मानसिकता को उभारा गया है। 'राधा नहीं नाचेगी' में किशोरों की मानसिकता और किशोर लड़कियों के प्रति अध्यापकों के दृष्टिकोण को उभारा गया है। बिल्लियां कुत्तों से बचने के लिए पाइप में जाती हैं और लहलुहान होती हैं, इस माध्यम से बच्चों की मानसिकता को सामने रखा गया है।

दूसरी श्रेणी की कहानियों में 'दो दोस्त', 'पंडा होटल', 'सुविधा एक्सप्रेस', 'सांप', 'शरद की दोपहर', 'जवाब की कीमत' हैं जिनमें भाषा की नई अभिव्यक्ति है और सामाजिक परिवेश के अंतर्विरोध हैं। 'दो दोस्त' का बक्सा एक आड़ है जो आजादी के दूसरे दशक से सड़ रही व्यवस्था को छिपाए है। कृष्ण कुमार की शैली के मूल में व्यवस्था रहती है और व्यवस्था की क्रूरता को अंतश्चेतना में समाए हुए उनकी शैली बनती और विकसित होती है। 'दो दोस्त' कहानी में आजादी के बाद की मार्क्सवादी दोस्तों की मानसिकता, उनके सोचने-समझने के संस्कारों को, उनकी नियति को रेखांकित किया गया है। 'पंडा होटल' में पंडे की कथा के माध्यम से मध्यमवर्गीय कॉलोनी में रहने वाले लोगों का वर्णन है। कृष्ण कुमार जब वर्णन करते हैं तो चीजों की तह में जाकर अंतर्विरोधों को पकड़ते हैं। 'शरद की दोपहर' में शिक्षा किस तरह एक फालतू चीज बनकर रह गई है इसका संकेत किया गया है। कहानी रामस्वरूप के माध्यम से विश्वविद्यालय प्रोफेसर शरद की नैतिकता, उसके मूल्यों पर प्रश्नचिह्न लगाती है। मध्यवर्गीय व्यक्ति को जो सुविधाएं इस शासन तंत्र से प्राप्त हो रही हैं उनके प्रति एक सार्थक गुस्सा 'सुविधा एक्सप्रेस' में व्यक्त किया गया है। संग्रह की एक महत्वपूर्ण कहानी है 'सांप' जिसमें एक किशोर अपने पिता को पुरानी पीढ़ी के रूप में देखता है। एक ओर उनमें अदम्य आकांक्षाएं, उनके जीवन संदर्भों को देखता है तो दूसरी ओर अपने आधुनिक होने का अफसोस भी उसे है। 'जवाब की कीमत' में फैंटसी के माध्यम से शासक-व्यवस्था की क्रूरता को उद्घाटित किया गया है।

संग्रह की दो कहानियां 'इंडिया के पर्याय' और 'केंचुल' में विदेशों में रह रहे भारतीयों की मनःस्थितियों को उद्घाटित किया गया है। 'केंचुल' में स्वीडन के अनुभवों को, अपने अतीत से जोड़ते हुए कहानी आगे बढ़ती

है। 'इंडिया के पर्याय' को भारतीयों के प्रति रागात्मक संबंधों को सामने रखा गया है, अमरीका में रह रहे भारतीयों की मानसिकता को उभारा गया है। 'इंडिया माने दशहरी आम, इंडिया माने बरसात का मौसम, इंडिया माने वैशाली का मसाला डोसा।'

कृष्ण कुमार अपनी इन कहानियों के माध्यम से समकालीन कहानी को एक नई जमीन पर खड़ा करना चाहते हैं। उनकी कहानियों के शीर्षक प्रतीकात्मक हैं, वे बिंबों और प्रतीकों के माध्यम से कहानी की संवेदना को व्यक्त करते हैं।

दस प्रतिनिधि कहानियाँ * की भूमिका में अमृत राय ने अपनी प्रतिबद्धता के बारे में लिखा है कि 'मेरी प्रतिबद्धता न तो किसी पार्टी के प्रति है और न ही किसी प्रतिष्ठान के प्रति है। मेरी प्रतिबद्धता सबसे पहले अपने विवेक के प्रति और पीड़ितों के प्रति और श्रेष्ठ जीवन मूल्यों के प्रति है।' अमृत राय अपनी इन कहानियों में अपनी प्रतिबद्धता का एहसास कराते हैं। उनकी इन दस प्रतिनिधि कहानियों में यथार्थ जीवन के सुख-दुख संघर्षरत मनुष्य के विविध संदर्भ देखने को मिलते हैं। निम्न मध्यवर्गीय परिवार की महिलाओं पर तरह-तरह के अन्याय हो रहे हैं। इन अन्यायों के बीच में उनकी स्थिति को अमृत राय कहानियों में वाणी देते हैं। वह अपने समय की कहानी को यथार्थ की एक नई भूमि पर खड़ा करते हैं। संग्रह में दस कहानियाँ संकलित हैं।

'सती का शाप' उन सामंती मूल्यों की कहानी है जिनके तहत परिवारों में स्त्रियों को कर्तई सम्मानजनक दर्जा नहीं दिया जाता। रमा का तपैदिक के मरीज से शादी करवाना और बाद में पति की मौत पर उसे दुल्हार देना, सास के अमानवीय व्यवहार को दर्शाता है। इसी अमानवीय व्यवहार का दूसरा पक्ष 'सावनी समा' कहानी में देखने को मिलता है जहाँ अर्थाभाव की वजह से चंद्रिका बाबू अपने बच्चों, अपनी पत्नी को मारता है। अर्थाभाव की वजह से डाकखाने में काम करने वाले चंद्रिका बाबू के जीवन में कोई हरियाली नहीं। जो कुछ उसके जीवन में है वह बादामी है, मटमैला है। अमृत राय की ये दोनों कहानियाँ संवेदना के एक ही धरातल पर टिकी हैं निम्न मध्यमवर्गीय परिवारों की विसंगतियों का एक दूसरा आयाम 'भोर से पहले' कहानी में देखने को मिलता है जहाँ मध्यवर्गीय आवरण के नीचे महिलाएं शरीर बेचने का धंधा करती हैं। 'मातम पुर्सी' कहानी में मध्यवर्गीय पिता के लिए अपनी बेटी की शादी न कर सकने का संताप बहुत गहराई से अभिव्यक्त किया गया है। आजादी के बाद कुछ ऐसा माहौल बना जिसके तहत गलत ढंग से पैसा कमाने वाले लोग निरंतर फलते-फूलते गए और ईमानदारी से पैसा कमाने वाले आर्थिक विपन्नता की चपेट में आ गए। बाबू राधे मोहन अपनी बेटियों की शादी न कर पाने के कारण आत्महत्या करते हैं। आजादी के बाद का यह यथार्थ बहुत की कारुणिक और अमानवीय है। मध्यवर्गीय परिवारों में शादी के लिए लड़की का सुंदर

होना अत्यंत आवश्यक माना गया है। ऐसा न होने पर जो कारुणिक स्थितियाँ पैदा होती हैं और जिस मानसिकता का निर्माण होता है उसे अमृत राय ने 'एक सांवली लड़की' कहानी में पूरी गहराई से चित्रित किया है। अमृत राय की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि वह समय के अंतराल के दौरान विकसित हुए संदर्भों को उद्घाटित करते हैं, और समय सापेक्ष संबंधों को सामने रखकर कहानी का ताना-बाना बुनते हैं। 'समय' कहानी में शादी से कुछ समय पहले के संबंध व स्थितियों और शादी के बाद के संबंध व स्थितियों में जो अंतर्विरोध आए हैं उन्हें सामने रखा गया है। इसी तरह 'अंधी लालटेन' कहानी में एक विस्तृत फलक के तहत आजादी के पहले के सामान्यजन के जीवन मूल्यों और आजादी के बाद के जीवन मूल्यों को रेखांकित किया गया है। इस रेखांकन की प्रक्रिया में अमृत राय समाज के अंतर्विरोधों को उद्घाटित करते हुए अपनी पक्षधरता साबित करते हैं। 'कठघरे' कहानी में इसी पक्षधरता का एक दूसरा आयाम देखने को है जहाँ मनुष्य के अपने अस्तित्व की लड़ाई के लिए संघर्ष है, दुख, क्रोध, विवशता और वृणा है।

अमृत राय की इन कहानियों के पात्र दबे-कुचले शोषित जन हैं जिनका अनेक प्रकार से शोषण किया जा रहा है। इस शोषण के मूल में सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था है जिसका संकेत अमृत राय अपनी प्रत्येक कहानी में कहीं न कहीं करते हैं।

शैलेंद्र सागर के कहानी संग्रह मकान ढह रहा है * की कहानियों में विसंगतियों से भरे समाज और क्रूरता से भरे वर्तमान शासन तंत्र केंद्र में हैं। संग्रह की कहानी 'डिनर पार्टी' और 'बदलिया' में नौकरशाही को केंद्र में रखा गया है। 'डिनर पार्टी' में एक नौकरशाह के परिवार में आई शून्यता है जहाँ एक तरफ डिनर पार्टियाँ हैं दूसरी तरफ पत्नी की उपेक्षा है। इन दोनों संदर्भों में दबावों के बीच में विकसित हो रही पत्नी की मानसिकता को 'वसूली' कहानी में उद्घाटित किया गया है। 'बदलिया' कहानी में भी पारिवारिक संबंधों के स्थान पर अपने पद और गरिमा में लिप्त नौकरशाह है। 'शुभकामना संदेश' नौकरशाही के बीच में बनने वाले नए संबंधों के प्रति शुभकामनाएं दर्शाए जाने की निरर्थकता का एहसास कराती है।

शैलेंद्र सागर कहीं नौकरशाही के अंतर्विरोधों को उजागर करते हैं, तो कहीं पारिवारिक रिश्तों, संबंधों को पूरी गहराई से सामने रखा गया है जहाँ पर पिता के मरने को यह कहकर टाल दिया जाता है—“मरना तो सभी को है”। कहानी का प्रमुख पात्र मंगला इन मूल्यों के विरोध में खड़ा होता है। 'पड़यंत्र' कहानी की संवेदना भी पारिवारिक संबंधों के धरातल पर ही खड़ी है जहाँ पर पिता के मरने के बाद मकान को हथियाना ही जीवन लक्ष्य बन जाता है। 'असुरक्षा' ऐसे पात्र की कहानी है जहाँ बूढ़ा चाचा अपनी जिंदगी भर की कमाई को अपनी सुरक्षा

* **दस प्रतिनिधि कहानियाँ** : अमृत राय; किताब घर, नई दिल्ली 110002; पृष्ठ संख्या : 107; मूल्य : 60 रुपए।

* **मकान ढह रहा है** : शैलेंद्र सागर; राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली; पृष्ठ : 163; मूल्य 60 रुपए।

के लिए संजोए रखना चाहता है। शैलेंद्र सागर इन प्रवृत्तियों के विरोध में एक सार्थक, संवेदनशील, और मानवीय पात्रों की रचनाकार इन प्रवृत्तियों का खंडन तो करते ही हैं साथ ही अपनी पक्षधरता भी व्यक्त करते हैं। यह पक्षधरता ही उनकी कहानियां को महत्वपूर्ण बनाती है।

संग्रह की दो कहानियां 'राहत' और 'मकान ढह रहा है' अत्यंत विशिष्ट कहानियां हैं। राहत कार्यों के नाम पर सरकारी धन का दुरुपयोग और गरीबों के शोषण का संकेत किया है। आजादी के बाद सरकार द्वारा जो राहत कार्य शुरू किए गए वे कितने अप्रासंगिक और फालतू थे, इसका संकेत इस कहानी में है। 'मकान ढह रहा है' ब्राह्मणों द्वारा निम्न जातियों के शोषण की भयावहता को रेखांकित है। शैलेंद्र सागर कहानी कहते-कहते कई सवाल खड़े करते हैं जो कहानी को संग्रह की अत्यंत विशिष्ट और महत्वपूर्ण कहानी बनाते हैं।

शैलेंद्र सागर अराजक समाज की कहानियां कहते हैं। इन सभी कहानियों में कोई नायक नहीं है बल्कि चरित्र है और इस चरित्र के

माध्यम से समकालीन परिवेश के अंतर्विरोधों को सघनता से प्रस्तुत करते हैं। शैलेंद्र सागर अपने विवेक के आधार पर अधिक सतर्कता और सजगता के साथ जिंदगी की मामूली सच्चाइयों को उद्धाटित करते हैं और बदलते हुए समय की संवेदना का महत्वपूर्ण रचनात्मक प्रमाण प्रस्तुत करते हैं।

इन चारों कहानी संकलनों में हमारे समय का बदला हुआ यथार्थ पूरी मार्मिकता के साथ अभिव्यक्त हुआ है। आज के कहानीकार के समक्ष देश के सामाजिक-आर्थिक संकट को परिभाषित करने और अपनी परंपरा के उदात्त मूल्यों को बनाए रखने की कठिन चुनौती है। वर्तमान दौर में सांप्रदायिकता और उपभोक्तावादी शक्तियों के भयावह हमले के सम्मुख हम अपनी स्मृति, विचार और संवेदना की सत्ता को किस तरह बनाए रखें, यही आज के कहानीकार का रचनात्मक संघर्ष है। ये चारों कहानी संकलन इस संघर्ष की एक आधारभूमि तैयार करते हैं। □

दूसरी जिंदगी

पृष्ठ 22 से आगे

“पागलों जैसी मैं, नहीं तू कर रहा है। क्या फर्क पड़ जाएगा अगर तू शादी के बाद नौकरी तलाश करता रहेगा। मिल ही जाएगी कभी न कभी। डिग्री तो है ही तेरे पास।”

“थोड़े दिन और इंतजार कर।

“अब मैं इंतजार नहीं कर सकती। भलाई इसी में है कि तू मुझे भूल जा।” कहते कहते वह सामने से आती टैक्सी रोक उसमें बैठकर चली गई। उसके बाद ... आज तक नहीं मिली ... बताओ, आराधना, बताओ मेरी क्या गलती थी।” कहते-कहते उसने मेरे हाथ इतने जोर से पकड़े कि मैं चिल्ला पड़ी। फिर भी उसके हाथों की पकड़ और तेज होती गई। और जब मैं बहुत जोर से चिल्लाई तब कहीं अविनाश जैसे होश में आया।

आज मैंने देखा, उसकी आंखें कुछ अजीब-सी लग रही हैं। उसके होठ फड़फड़ा रहे हैं।

उसने मेरे हाथ छोड़ दिए। मेरे हाथों में नील पड़ गए थे। नील देखते ही वह मेरे कंधे पर सिर रख रोने लगा। भरी सड़क पर वह मेरे कंधों पर सिर रखे रो रहा था। मेरे हाथ उसकी कमर पर थे, मैं उसे दिलासा दे रही थी।

आते-जाते लोगों को लगा। मियां-बीबी का झगड़ा है। कोई रुका नहीं। वैसे भी दिल्ली में कोई मरते हुए आदमी तक के लिए नहीं रुकता तो यहां तो सिर्फ एक आदमी एक औरत के कंधे पर सिर रखे रो रहा था। कोई वजह ही नहीं थी किसी के रुकने की।

थोड़ी देर में उसका बच्चे-सा रोना रुक गया। मैंने अपने पल्लू से उसके आंसू पोछे। बालों में हाथ फिराया।

“आज भी तुम आराधना से उतना ही प्यार करते हो? क्यों?”

“कोई और लड़की तुम्हारी जिंदगी में नहीं आई?”

“ढूंढने की कोशिश ही नहीं की।”

“मुझे क्यों ढूंढा?”

“हमनाम थीं और लेखक। फिर हमआवाज भी निकलीं। और फिर यथार्थ को बर्दाश्त कर सकोगी। यही सब सोचकर ...”

उस शाम अविनाश मुझे घर छोड़कर चला गया। जाते-जाते ‘थैंक्स’ कहा। जैसे कह रहा हो, बस यही मोड़ था वह जब हम दोनों बिछुड़ गए थे, तब और आज वैसे ही

बिछुड़ रहे हैं। उसकी आंखों में एक वीरानापन था। उसके होंठ बुदबुदा रहे थे — “आराधना, आराधना!” □

भारतीय जन-जीवन चिंतन के दर्पण में

खंड-एक

मूल्य : 40.00 रु.

आकाशवाणी द्वारा डा. राजेंद्र प्रसाद की स्मृति में आयोजित भाषणों का संकलन।

भाषा, कला, साहित्य, संस्कृति, दर्शन, समाजशास्त्र आदि विविध विषयों पर हजारी प्रसाद द्विवेदी, महादेवी वर्मा, विद्याप्रकाश दत्त, श्यामाचरण दुबे, भगवतचरण उपाध्याय, पी.के. त्रिपाठी, सच्चिदानंद वात्स्यायन, अजित राम शर्मा, मोटूरि सत्यनारायण तथा विष्णु प्रभाकर जैसे जाने-माने विद्वानों, चिंतकों के विचार एक ही ग्रंथ में उपलब्ध।

संपर्क : व्यापार व्यवस्थापक

प्रकाशन विभाग

पटियाला हाउस, नई दिल्ली

फिल्म समारोह

पृष्ठ 31 से आगे

पुनरावलोकन खंड में ही फेलीनी के अलावा इजराइल के फिल्म निर्माता आमोस गिताई की पांच, चिली के फिल्म निर्माता मिगुएल लिट्टिन की तीन (द जैकल आफ नहूएलतोरे, द प्रोमाइज्ड लैंड, द शिपरेकड), पाप स्टार एल्विस प्रिसले अभिनीत दस फिल्में (एल्विस आन टुअर, दि ट्रबल विद गर्ल्स, स्टे अवे जोए, डबल ट्रबल, हारूम स्कारूम, एल्विस दैट्स दि वे इट इज़, गर्ल हैप्पी, वीवा लास वेगास, इट हैप्पेंड एट दि वर्ल्ड्स फेयर और जेलहाऊस राक), श्रद्धांजलि के तौर पर हंगरी के निर्देशक दिवंगत जोल्यन फाबरी की चार (रिक्विम, टूवेंटी आवर्स, दि फिफ्थ सील, दि अनफिनिश सेंटेंसिस) और किस्लोवस्की की तीन (थ्री कलर्स : ब्ल्यू, थ्री कलर्स : व्हाइट और थ्री कलर्स : रेड) फिल्में दिखाई गईं।

सिनेमा के शताब्दी वर्ष के उपलक्ष्य में इस समारोह में पहली बार फिल्म विरासत खंड शामिल किया गया जिनमें भारत की दो और विदेशों की छह फिल्में (कालिया मर्दन और दिलेर जिगर — भारत; दि विग पैरेड, लोन्सम, दि पैथम आफ दि ओपेरा — अमरीका, तार्तुफ नाना — फ्रांस; और मैसिस्टे आल इन्फर्नो — इटली) रखी गई थीं। मूक दौर की इन फिल्मों का प्रदर्शन विशेष रूप से तैयार किए गए संगीत के साथ किया गया। संगीत की लय, ताल और इसकी रचना बिल्कुल आरंभिक दौर के संगीत जैसी ही थी। दृश्य के साथ संगीत के अद्भुत समायोजन और संवाद के लिए विराम आदि के विशेष ध्यान ने इसे एक अविस्मरणीय अनुभव के रूप में बदल दिया।

एक और महत्वपूर्ण खंड 'विफोर हालीवुड' शीर्षक से था जिस में 1995 से 1915 की संकलित अमरीकी फिल्मों में थीं। 'फोकस' भारत, एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमरीका की महिला निर्देशकों की बीस फिल्मों पर रहा जिनमें भारत की दस तथा अन्य देशों की महिला निर्देशकों की दस फिल्में शामिल थीं। हालांकि यह विवाद भी उठा कि निर्देशकों को महिला या पुरुष के खाने में बांटना उचित है या नहीं, फिर भी यह एक सफल खंड था। सूचना और प्रसारण मंत्री के.पी. सिंहदेव ने समारोह के दौरान यह घोषणा की कि अगले वर्ष से महिला निर्देशक खंड प्रतियोगी खंड होगा।

भारतीय फिल्मों में पैनोरमा के अंतर्गत 16 फीचर फिल्में और 15 गैर फीचर फिल्में दिखाई गईं। मुख्यधारा वर्ग में 1990 में बनी 12 लोकप्रिय फिल्मों का प्रदर्शन किया गया। मराठी सिनेमा भी भारत के पुराने फिल्म उद्योग में से एक है। इसलिए बंबई में मराठी फिल्मों का पुनरावलोकन खंड भी रखा गया। जिसमें 18 फीचर और एक गैर फीचर फिल्म दिखाई गई।

फिल्म शताब्दी वर्ष में इस समारोह का एक और आकर्षण जादुई

लालटेन का प्रदर्शन रहा। आज से लगभग 100 साल पहले कल्याण के पटवर्धन बंधुओं ने तीन स्लाइड प्रोजेक्टरों के जरिए दोहरे कलर प्लेट से आकृतियां पर्दे पर संप्रेषित कीं जो प्रक्षेपित बिंबों की त्वरा के कारण गतिशीलता का आभास देती थीं। पटवर्धन के इस विस्मयकारी प्रयोग में बाहर से कथोपकथन और संगीत के जरिए पर्दे पर उभरने वाली आकृतियों के अनुरूप एक कहानी का वर्णन किया जाता था। पटवर्धन द्वारा बड़े सुंदर ढंग से चित्रित कुछ स्लाइडें भारत के राष्ट्रीय फिल्म अभिलेखागार में सुरक्षित रखी गई हैं। उन्हीं स्लाइडों से कृष्ण जन्म की कहानी का बंबई में भास्कर चंदावरकर ने जादुई लालटेन और समसामयिक कथा वर्णन के साथ सफल प्रदर्शन किया।

राष्ट्रीय फिल्म विकास निगम ने इस अवसर पर बंबई के नेहरू सेंटर में एक सैट तैयार किया। यह सैट दरअसल पेरिस स्ट्रीट के उस ग्रांड कैफे का था जहां दुनिया में पहली बार ल्युमिए बंधुओं ने अपने सिनेमाटोग्राफ का प्रदर्शन किया था।

इसके साथ ही समारोह के ठीक बीच में बल्लभ भाई पटेल स्टेडियम में राष्ट्रीय फिल्म विकास निगम ने सुभाष घई के सहयोग से सिनेमा-सिनेमा-100 का विशेष कार्यक्रम रखा था। सूचना और प्रसारण मंत्रालय ने सिनेमा के शताब्दी समारोहों के आयोजन के लिए एक विशेष समिति गठित की है जो इस सिलसिले में एक विस्तृत रूपरेखा तैयार करेगी।

कुछ भी हो बंबई फिल्म समारोह में कुछ नयापन लाने की कोशिश की गई, कुछ नए प्रयोग किए गए और इसका नतीजा भी किसी हद तक बेहतर रहा है। समारोह के दौरान परिचर्चाओं में एक बात काफी जोर से उठी कि टी.वी. और सैटेलाइट की क्रांति के इस दौर में क्या एक माध्यम के रूप में फिल्म का अस्तित्व खतरे में है। यह एक व्यापक विषय है और दुनिया भर में इस पर बहस शुरू हो चुकी है लेकिन इतना तय है कि पर्दे पर अच्छी फिल्मों के प्रदर्शन ने आज भी दर्शकों को बांधे रखा है और लोगों को घरेलू 'वीडियो' से सिनेमा हाल तक लाने की क्षमता इसमें बनी हुई है। सिनेमा की इस शक्ति को बनाए रखने और इसको विकसित करने की जिम्मेदारी मुख्यतः फिल्म उद्योग से जुड़े लोगों की है और उन्हीं पर सिनेमा का भविष्य भी निर्भर करेगा। □

पाठकों से

मुद्रण की कठिनाई के कारण पिछले कुछ अंकों से आजकल समय पर प्रकाशित नहीं हो पा रहा है। पाठकों को इससे जो असुविधा हो रही है उसका हमें खेद है।

हम प्रयत्नशील हैं कि पत्रिका समय पर उपलब्ध हो और आशा करते हैं कि अगले कुछ अंकों तक यह देरी पूरी तरह समाप्त हो जाएगी। पाठकों का जो सहयोग और प्रोत्साहन हमें मिल रहा है, आशा है वह पूर्ववत् जारी रहेगा।

— संपादक

आपकी जरूरत, हमसे बेहतर जाने कौन ?

संघ एवं राज्य लोक सेवा आयोग की सिविल सेवा परीक्षाओं (प्रारम्भिक तथा मुख्य) के सामान्य अध्ययन प्रश्न पत्र की बेहतर तैयारी के लिए प्रस्तुत है — परीक्षोपयोगी सीरीज



एक सरल एवं उच्चकोटि की परीक्षोपयोगी सीरीज

सिविल सेवा परीक्षा
की तैयारी के लिए

महत्वपूर्ण उपयोगी, प्रामाणिक एवं
विश्लेषणात्मक सामग्री आपकी जरूरत
के अनुसार क्योंकि वर्षों के अनुभव से
हम जानते हैं कि कब आपको क्या चाहिये।

हिन्दी की
सर्वाधिक बिकने वाली
सामान्य ज्ञान पत्रिका

परीक्षोपयोगी सीरीज 1	भारतीय अर्थव्यवस्था	मूल्य — रु. 50.00
परीक्षोपयोगी सीरीज 2	भूगोल-भारत एवं विश्व	मूल्य — रु. 45.00
परीक्षोपयोगी सीरीज 3	भारतीय इतिहास	मूल्य — रु. 40.00
परीक्षोपयोगी सीरीज 4	भारतीय राजव्यवस्था	मूल्य — रु. 40.00
परीक्षोपयोगी सीरीज 5	भारतीय कला एवं संस्कृति	मूल्य — रु. 40.00
परीक्षोपयोगी सीरीज 6	सामान्य विज्ञान	मूल्य — रु. 50.00

जब उपलब्ध हैं सामान्य अध्ययन के लिए अतिरिक्तांक
तब क्या करेंगे मात्र विशेषांक ?

आज ही अपने निकटतम पुस्तक विक्रेता से खरीदें या पूरा मूल्य निम्न पते पर भेज कर प्राप्त करें

प्रतियोगिता दर्पण 2/11, स्वदेशी बीमा नगर, आगरा — 282002 फोन — 351002, 350002, 351238 फैक्स — 0562-351251



विंसेंट शीन

विंसेंट
शीन की प्रसिद्ध
पुस्तक 'ए ग्रेट
लाइफ इन
ब्रीफ' पहली
बार हिंदी में

गांधीजी

एक महात्मा की संक्षिप्त जीवनी

मूल्य : 50 रुपये

संपर्क :

व्यापार व्यवस्थापक

प्रकाशन विभाग

पटियाला हाउस

नई दिल्ली - 110001